ख़ुतबात–2

इस्लाम की हक़ीक़त

सय्यद अबुल आला मौदूदी

इस्लाम की हक़ीक़त

(ख़ुतबात-2)

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)

अनुवादक

डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स

नई दिल्ली - 110025

KHUTBAT -II (हिन्दी)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -51

किताब का नामः ख़ुतबात भाग-२
लेखकः मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी

प्रकाशकः मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26971652, 26954341
फ़ैक्स : 26947858
E-mail: mmipublishers@gmail.com
Website: www.mmipublishers.net

पृष्ठ	:	52
संस्करण	:	फरवरी 2009 ई०
संख्या	:	2100
मूल्य	:	16.00

मुद्रक : असीला आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली-2

विषय–सूची

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ○

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है ।'

भूमिका

इस किताब में इस्लामी जगत् के एक बड़े आलिम मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०) के उन ख़ुतबों (भाषणों) को जमा करके प्रकाशित किया गया है, जो उन्होंने सन् 1938 ई० में दारुल इस्लाम पठानकोट (पंजाब) की जामा मस्जिद में कम पढ़े-लिखे आम मुसलमानों के सामने दिए थे । इन ख़ुतबों में इतने सादा और प्रभावकारी अन्दाज़ में इस्लाम की शिक्षाओं को उनकी रूह के साथ पेश किया गया है कि इन्हें सुनकर या पढ़कर बेशुमार लोगों की ज़िन्दगियाँ सुधर गईं और वे बुराइयों को छोड़ने और भलाइयों को अपनाने पर मजबूर हो गए । इन लोगों में मुसलमान भी हैं और ग़ैर मुसलिम भी ।

इन ख़ुतबों की इन्हीं ख़ूबियों की वजह से दुनिया की अनेक भाषाओं में इनके तर्जुमे बड़ी तादाद में प्रकाशित किए गए और वे सभी लोकप्रिय हुए ।

मौलाना मौदूदी की एक अन्य लोकप्रिय किताब दीनियात (इस्लाम धर्म) में इस्लामी अक़ीदों की तफ़सील बयान की गई है और इस्लाम के शरई निज़ाम (व्यावहारिक व्यवस्था) के बारे में भी कुछ जानकारी उपलब्ध कराई गई है और अब इस किताब में दीन की रूह (स्प्रिट) और इबादतें तफ़सील से बयान कर दी गई हैं । उक्त दोनों किताबों को मिलाकर पढ़ने के बाद दीन को समझना और दीन पर चलना भी आसान होगा और फिर दीन पर अमल करने के नतीजे में इंसान और इंसानी समाज में एक ख़ुशगवार तब्दीली देखने में आएगी और लोग दीन के फ़ायदों और बरकतों को अपनी आँखों से ख़ुद देख सकेंगे ।

जो लोग इन ख़ुतबों को जुमा में सुनाना चाहें वे पहले हर ख़ुतबे के शुरू में मसनून ख़ुतबा पढ़ें । दूसरा ख़ुतबा लाज़िमी तौर पर अरबी में दिया जाना चाहिए ।

यह बात भी बता देना ज़रूरी मालूम होता है कि ये ख़ुतबे जिन हालात में दिए गए थे वे अब बहुत कुछ बदल चुके हैं, इसलिए पढ़ते वक़्त उन हालात को नज़र में रखना चाहिए ।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि०) हिन्दी ज़ुबान में इस्लामी शिक्षाओं पर आधारित किताबें तैयार करने की सेवा में लगा हुआ है । इस किताब को आपकी सेवा में पेश करने का सौभाग्य हमें मिला इसपर हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं ।

अल्लाह से दुआ है कि वह इस किताब को ज़्यादा से ज़्यादा मुफ़ीद बनाए ।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
अध्यक्ष
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट

मुसलमान किसे कहते हैं ?

मुसलमान भाइयो ! आज मैं आपके सामने मुसलमान की सिफ़ात (ख़ूबियाँ) बयान करूँगा, यानी यह बताऊँगा कि मुसलमान होने के लिए कम से कम शर्तें क्या हैं और आदमी को कम से कम क्या होना चाहिए कि वह मुसलमान कहलाए जाने के क़ाबिल हो ।

कुफ़्र क्या है और इस्लाम क्या है ?

इस बात को समझने के लिए सबसे पहले आपको यह जानना चाहिए कि कुफ़्र क्या है और इस्लाम क्या है ? कुफ़्र यह है कि आदमी ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी से इनकार कर दे और इस्लाम यह है कि आदमी सिर्फ़ ख़ुदा का फ़रमाँबरदार हो और हर ऐसे तरीक़े या क़ानून या हुक्म को मानने से इनकार कर दे जो ख़ुदा की भेजी हुई हिदायत के ख़िलाफ़ हो । इस्लाम और कुफ़्र का यह फ़र्क़ क़ुरआन मजीद में साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है। कहा गया—

وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ۝

यानी, जो ख़ुदा की उतारी हुई हिदायत के मुताबिक़ फ़ैसला न करें, ऐसे लोग ही दरअसल काफ़िर हैं । (क़ुरआन, 5:44)

फ़ैसला करने से यह मुराद नहीं है कि अदालत में जो मुक़द्दमा जाए बस उसी का फ़ैसला ख़ुदा की किताब के मुताबिक़ हो, बल्कि दरअसल इससे मुराद वह फ़ैसला है जो हर शख़्स अपनी ज़िन्दगी में हर वक़्त किया करता है । हर मौक़े पर आपके सामने यह सवाल आता है कि फ़लाँ काम किया जाए या न किया जाए ? फ़लाँ बात इस तरह की जाए या उस तरह की जाए ? फ़लाँ मामले में यह तरीक़ा अपनाया जाए या वह तरीक़ा अपनाया जाए ? ऐसे तमाम मौक़ों पर एक तरीक़ा ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत बताती है, और दूसरा तरीक़ा इनसान के अपने मन की ख़्वाहिशें या बाप-दादा की रसमें या इनसान के बनाए

हुए क़ानून बताते हैं। अब जो शख़्स ख़ुदा के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर किसी दूसरे तरीक़े के मुताबिक़ काम करने का फ़ैसला करता है, वह दरअसल कुफ़्र का तरीक़ा इख़तियार करता है। अगर उसने अपनी सारी ज़िन्दगी ही के लिए यही ढंग इख़तियार किया है तो वह पूरा काफ़िर है और अगर वह कुछ मामलों में तो ख़ुदा की हिदायत को मानता हो और कुछ में अपने नफ़्स की ख़्वाहिशों को या रस्मो रिवाज को या इनसानों के क़ानून को ख़ुदा के क़ानून पर तरजीह देता हो, तो जितना भी वह ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत करता है उतना ही कुफ़्र में मुब्तला है। कोई आधा काफ़िर है, कोई चौथाई काफ़िर है, किसी में दसवाँ हिस्सा कुफ़्र का है और किसी में बीसवाँ हिस्सा। ग़रज़ जितनी ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत है उतना ही कुफ़्र भी है।

इस्लाम इसके सिवा कुछ नहीं है कि आदमी सिर्फ़ ख़ुदा का बन्दा हो—न नफ़्स का बन्दा, न बाप-दादा का बन्दा, न ख़ानदान और क़बीले का बन्दा, न मौलवी साहब और पीर साहब का बन्दा, न ज़मींदार साहब, तहसीलदार साहब और मजिस्ट्रेट साहब का बन्दा, न ख़ुदा के सिवा किसी और साहब का बन्दा। क़ुरआन मजीद में कहा गया है—

قُلْ يَاَهْلَ الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ اَنْ لاَّ نَعْبُدَ اِلاَّ اللّٰهَ وَلاَ نُشْرِكَ بِهٖ شَيْئًا وَّلاَ يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ۝

यानी, ऐ नबी! किताबवालों से कहो कि आओ हम-तुम एक ऐसी बात पर इत्तिफ़ाक़ कर लें जो हमारे और तुम्हारे बीच एक-सी है (यानी जो तुम्हारे नबी भी बता गए हैं और ख़ुदा का नबी होने की हैसियत से मैं भी वही बातें कहता हूँ)। वह बात यह है कि एक तो हम अल्लाह के सिवा किसी के बन्दे बनकर न रहें, दूसरे यह कि ख़ुदाई में किसी को शरीक न करें और तीसरी बात यह है कि कोई इनसान किसी इनसान को अपना मालिक और अपना आक़ा न बनाए। ये तीन बातें अगर वे नहीं मानते तो उनसे कह

दो कि गवाह रहो, हम तो मुसलमान हैं, यानी इन तीनों बातों को मानते हैं । (क़ुरआन, 3:64)

फिर फ़रमाया—

اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ اَسْلَمَ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّاِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ۝

यानी, क्या वे ख़ुदा की इताअत के सिवा किसी और की इताअत चाहते हैं ? हालाँकि ज़मीन और आसमान की हर चीज़ चाहे न चाहे ख़ुदा की इताअत कर रही है और सबको उसी की तरफ़ पलटना है । (क़ुरआन, 3:83)

इन दोनों आयतों में एक ही बात बयान की गई है । यानी यह कि असली दीन ख़ुदा की इताअत और फ़रमाँबरदारी है । ख़ुदा की इबादत के मानी ये नहीं हैं कि बस पाँच वक़्त उसके आगे सजदा कर लो। बल्कि उसकी इबादत के मानी ये हैं कि रात-दिन में हर वक़्त उसके हुक्म की इताअत करो, जिस चीज़ से उसने रोका है उससे रुक जाओ, जिस चीज़ का उसने हुक्म दिया है उसपर अमल करो । हर मामले में यह देखो कि ख़ुदा का हुक्म क्या है, यह न देखो कि तुम्हारा अपना दिल क्या कहता है, तुम्हारी अक़्ल क्या कहती है, बाप-दादा क्या कर गए हैं, ख़ानदान और बिरादरी की क्या मरज़ी है, जनाब मौलवी साहब क़िबला और जनाब पीर साहब क़िबला क्या फ़रमाते हैं और फ़लाँ साहब का क्या हुक्म है और फ़लाँ साहब की क्या मरज़ी है ? अगर आपने ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर किसी की भी बात मानी तो मानो ख़ुदा की ख़ुदाई में उसको शरीक किया; उसको वह दर्जा दिया जो सिर्फ़ ख़ुदा का दर्जा है । हुक्म देनेवाला तो सिर्फ़ ख़ुदा है । क़ुरआन में है—

اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ۝

हुक्म बस अल्लाह का है। (क़ुरआन, 6:57)

बन्दगी के लायक़ तो सिर्फ़ वह है जिसने आपको पैदा किया और जिसके बलबूते पर आप ज़िन्दा हैं । ज़मीन और आसमान की हर चीज़ उसी का

हुक्म मान रही है । कोई पत्थर किसी पत्थर की इताअत नहीं करता, कोई पेड़ किसी पेड़ की इताअत नहीं करता, कोई जानवर किसी जानवर की इताअत नहीं करता । फिर क्या आप जानवरों और पेड़ों और पत्थरों से भी गए-गुज़रे हो गए कि वे तो सिर्फ़ ख़ुदा की इताअत करें और आप ख़ुदा को छोड़कर इनसानों की इताअत करें ? —यह है वह बात जो क़ुरआन की इन दोनों आयतों में बयान की गई है ।

गुमराही के तीन रास्ते

अब मैं आपको बताना चाहता हूँ कि कुफ़्र और गुमराही दरअसल निकलती कहाँ से है। क़ुरआन पाक हमको बताता है कि इस कमबख़्त बला के आने के तीन-रास्ते हैं।

(1) नफ़्स की बंदगी

पहला रास्ता इनसान के अपने नफ़्स की ख़्वाहिशें और मन की इच्छाएँ हैं । क़ुरआन का फ़रमान है—

وَمَنْ اَضَلُّ مِمَّنِ اتَّبَعَ هَوٰهُ بِغَيْرِ هُدًى مِّنَ اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۝

> यानी, उससे बढ़कर गुमराह कौन होगा, जिसने ख़ुदा की हिदायत के बजाए अपने नफ़्स की ख़्वाहिश की पैरवी की, ऐसे ज़ालिम लोगों को ख़ुदा हिदायत नहीं देता । (क़ुरआन, 28:50)

मतलब यह है कि इनसान को सबसे बढ़कर गुमराह करनेवाली चीज़ इनसान के अपने नफ़्स की ख़्वाहिशें हैं । जो शख़्स ख़्वाहिशों का बन्दा बन गया उसके लिए ख़ुदा का बन्दा बनना मुमकिन ही नहीं । वह तो हर वक़्त यह देखेगा कि मुझे रुपया किस काम में मिलता है, मेरी इज़्ज़त और शोहरत किस काम में होती है, मुझे लज़्ज़त और लुत्फ़ किस काम में हासिल होता है, मुझे आराम और सुख-चैन किस काम में मिलता है । बस ये चीज़ें जिस काम में होंगी उसी को वह इख़तियार करेगा, चाहे ख़ुदा उससे मना करे; और ये चीज़ें जिस काम में न हों उसको वह हरगिज़ न करेगा,

चाहे ख़ुदा उसका हुक्म दे । तो ऐसे शख़्स का ख़ुदा, अल्लाह तबारक व तआला न हुआ, उसका अपना मन और नफ़्स ही उसका ख़ुदा हो गया । उसको हिदायत कैसे मिल सकती है ? इसी बात को दूसरी जगह कुरआन में यूँ बयान किया गया है—

أَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلٰهَهُ هَوٰهُ ۭ أَفَأَنْتَ تَكُوْنُ عَلَيْهِ وَكِيْلًا ۝ أَمْ تَحْسَبُ أَنَّ أَكْثَرَهُمْ يَسْمَعُوْنَ أَوْ يَعْقِلُوْنَ ۭ إِنْ هُمْ إِلَّا كَالْأَنْعَامِ بَلْ هُمْ أَضَلُّ سَبِيْلًا ۝

यानी, ऐ नबी ! तुमने उस शख़्स के हाल पर ग़ौर भी किया जिसने अपने नफ़्स की ख़्वाहिश को अपना ख़ुदा बना लिया है ? क्या आप ऐसे शख़्स की निगरानी कर सकते हैं ? क्या आप समझते हैं कि उनमें से बहुत-से लोग सुनते और समझते हैं ? हरगिज़ नहीं, ये तो जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी गए-गुज़रे ।

(क़ुरआन, 25:43-44)

नफ़्स के बन्दे का जानवरों से बदतर होना ऐसी बात है जिसमें किसी शक की गुंजाइश ही नहीं है । कोई जानवर आपको ऐसा न मिलेगा जो ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई हद से आगे बढ़ता हो । हर जानवर वही चीज़ खाता है जो ख़ुदा ने उसके लिए मुक़र्रर की है; उसी तरह खाता है जिस तरह उसके लिए मुक़र्रर की है । और जितने काम जिस जानवर के लिए मुक़र्रर हैं, बस उतने ही करता है । मगर यह इनसान ऐसा जानवर है कि जब यह अपनी ख़्वाहिश का बन्दा बनता है तो ऐसी-ऐसी हरकतें कर गुज़रता है जिनसे शैतान भी पनाह माँगे । यह तो गुमराही के आने का पहला रास्ता है ।

(2) बाप-दादा की अंधी पैरवी

गुमराही के आने का दूसरा रास्ता यह है कि बाप-दादा से जो रस्म व रिवाज, जो अक़ीदे और ख़यालात, जो रंग-ढंग चले आ रहे हों आदमी उनका गुलाम बन जाए और ख़ुदा के हुक्म से बढ़कर उनको समझे और अगर उसके ख़िलाफ़ ख़ुदा का हुक्म उसके सामने पेश किया जाए तो कहे

कि मैं तो वही करूँगा, जो मेरे बाप-दादा करते थे और जो मेरे ख़ानदान और क़बीले का रिवाज है। जो शख़्स इस मर्ज़ में फँसा है वह ख़ुदा का बन्दा कब हुआ ? उसके ख़ुदा तो उसके बाप-दादा, उसके ख़ानदान और क़बीले के लोग हैं। उसको यह झूठा दावा करने का क्या हक़ है कि मैं मुसलमान हूँ ? क़ुरआन करीम में इसपर भी बड़ी सख़्ती के साथ तंबीह की गई है—

وَاِذَا قِيلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَآ اَلْفَيْنَا عَلَيْهِ آبَائَنَا ، اَوَلَوْ كَانَ آبَائُهُمْ لاَ يَعْقِلُوْنَ شَيْئًا وَّلاَ يَهْتَدُوْنَ ○

यानी, और जब कभी उनसे कहा गया कि जो हुक्म ख़ुदा ने भेजा है उसकी पैरवी करो, तो उन्होंने यही कहा कि हम तो उस बात की पैरवी करेंगे जो हमें बाप-दादा से मिली है। अगर उनके बाप-दादा किसी बात को न समझते हों और वे सीधी राह पर न हों तो क्या ये फिर भी उन्हीं की पैरवी किए चले जाएँगे ?

(क़ुरआन, 2:170)

और दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया—

وَاِذَا قِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا اِلٰى مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَ اِلَى الرَّسُوْلِ قَالُوْا حَسْبُنَا مَا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا ، اَوَلَوْ كَانَ اٰبَآؤُهُمْ لاَ يَعْلَمُوْنَ شَيْئًا وَّلاَ يَهْتَدُوْنَ

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا عَلَيْكُمْ اَنْفُسَكُمْ ، لاَ يَضُرُّكُمْ مَّنْ ضَلَّ اِذَا اهْتَدَيْتُمْ ، اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ○

और जब उनसे कहा गया कि आओ उस फ़रमान की तरफ़ जो ख़ुदा ने भेजा है और आओ रसूल के तरीक़े की तरफ़, तो उन्होंने कहा कि हमारे लिए तो बस वही तरीक़ा काफ़ी है जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। क्या ये बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाएँगे चाहे उनको किसी बात का इल्म न हो

और वे सीधे रास्ते पर न हों ? ऐ ईमान लानेवालो ! तुमको अपनी फ़िक्र होनी चाहिए । अगर आप सीधे रास्ते पर लग जाओ तो किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हें कोई नुक़सान न होगा । फिर आख़िरकार तुम सबको ख़ुदा की तरफ़ वापिस जाना है । उस वक़्त ख़ुदा तुमको तुम्हारे आमाल का भला-बुरा सब कुछ बता देगा ।

(क़ुरआन, 5:104-105)

यह ऐसी गुमराही है जिसमें लगभग हर ज़माने के जाहिल लोग फँसे रहे हैं और हमेशा ख़ुदा के रसूलों की हिदायत को मानने से यही चीज़ इनसान को रोकती रही है । हज़रत मूसा (अलै०) ने जब लोगों को ख़ुदा की शरीअत की तरफ़ बुलाया था, उस वक़्त भी लोगों ने यही कहा था—

اَجِئْتَنَا لِتَلْفِتَنَا عَمَّا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا.

क्या तू हमें उस रास्ते से हटाना चाहता है, जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है ? (क़ुरआन, 10:78)

हज़रत इबराहीम (अलै०) ने जब अपने क़बीलेवालों को शिर्क से रोका तो उन्होंने भी यही कहा था—

وَجَدْنَا اٰبَآءَنَا لَهَا عَابِدِيْنَ○

हमने तो अपने बाप-दादा को इन्हीं ख़ुदाओं की बन्दगी करते हुए पाया है । (क़ुरआन, 21:53)

ग़रज़ इसी तरह हर नबी के मुक़ाबले में लोगों ने यही दलील पेश की है कि आप जो कहते हैं यह हमारे बाप-दादा के तरीक़े के ख़िलाफ़ है । इसलिए हम इसे नहीं मानते । अत: क़ुरआन में आया है—

وَكَذٰلِكَ مَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ فِي قَرْيَةٍ مِّنْ نَّذِيْرٍ اِلاَّ قَالَ مُتْرَفُوْهَآ اِنَّا وَجَدْنَا اٰبَآءَنَا عَلٰى اُمَّةٍ وَّ اِنَّا عَلٰى آثَارِهِمْ مُّقْتَدُوْنَ قَالَ اَوَلَوْ جِئْتُكُمْ بِاَهْدٰى مِمَّا وَجَدْتُّمْ عَلَيْهِ اٰبَآئَكُمْ ط قَالُوْا اِنَّا بِمَا اُرْسِلْتُمْ بِهٖ كَافِرُوْنَ○

فَانْتَقَمْنَا مِنْهُمْ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُكَذِّبِيْنَ۝

यानी, ऐसा ही होता रहा है कि जब कभी हमने किसी बस्ती में किसी डरानेवाले यानी पैग़म्बर को भेजा तो उस बस्ती के खाते-पीते लोगों ने यही कहा कि हमने अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया है और हम उन्हीं के क़दम-ब-क़दम चल रहे हैं । पैग़म्बर ने उनसे कहा कि अगर मैं उससे बेहतर बात बताऊँ जिसपर तुमने अपने बाप-दादा को पाया है तो क्या फिर भी आप बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाओगे ? उन्होंने जवाब दिया कि हम उस बात को नहीं मानते जो आप लेकर आए हो । इस तरह उन्होंने यह जवाब दिया तो हमने भी उनको ख़ूब सज़ा दी और अब देख लो कि हमारे हुक्मों के झुठलानेवालों का क्या अंजाम हुआ है ।

(क़ुरआन, 43:23–25)

यह सब कुछ बयान करने के बाद अल्लाह तआला फ़रमाता है कि या तो बाप-दादा ही की पैरवी कर लो, या फिर हमारे ही हुक्म की पैरवी करो । ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं । मुसलमान होना चाहते हो तो सबको छोड़कर सिर्फ़ उस बात को मानो जो हमने बताई है—

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَاط اَوَلَوْ كَانَ الشَّيْطٰنُ يَدْعُوْهُمْ اِلٰى عَذَابِ السَّعِيْرِ۝وَمَنْ يُّسْلِمْ وَجْهَهٗٓ اِلَى اللّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ط وَاِلَى اللّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ۝وَمَنْ كَفَرَ فَلَا يَحْزُنْكَ كُفْرُهٗ ط اِلَيْنَا مَرْجِعُهُمْ فَنُنَبِّئُهُمْ بِمَا عَمِلُوْا-

यानी, और जब उनसे कहा गया कि उस हुक्म की पैरवी करो जो ख़ुदा ने भेजा है तो उन्होंने कहा कि नहीं, हम तो उस बात की पैरवी करेंगे जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है । क्या वे अपने बाप-दादा की पैरवी करेंगे चाहे शैतान उनको जहन्नम

के अज़ाब ही की तरफ़ क्यों न बुलाता रहा हो ? जो कोई अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के सुपुर्द कर दे और नेकी करनेवाला हो उसने तो मज़बूत रस्सी थाम ली और आख़िरकार तमाम मामले ख़ुदा के हाथ में हैं। और जिसने उससे इनकार किया तो ऐ नबी, तुमको उसके इनकार से रंजीदा होने की ज़रूरत नहीं । वे सब हमारी तरफ़ वापिस आनेवाले हैं । फिर हम उन्हें उनके करतूतों का अंजाम दिखा देंगे । (कुरआन, 31:21–23)

(3) ग़ैरुल्लाह की इताअत

यह गुमराही के आने का दूसरा रास्ता था । तीसरा रास्ता क़ुरआन ने यह बताया है कि इनसान जब ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर दूसरे लोगों के हुक्म मानने लगता है और यह ख़याल करता है कि फ़लाँ शख़्स बड़ा आदमी है, उसकी बात पक्की होगी, या फ़लाँ शख़्स के हाथ में मेरी रोटी है, इसलिए उसकी बात माननी चाहिए, या फ़लाँ शख़्स बड़ा इख़तियारवाला है, इसलिए उसकी फ़रमाँबरदारी करनी चाहिए, या फ़लाँ साहब अपनी बद्दुआ से मुझे तबाह कर देंगे या अपने साथ जन्नत में ले जाएँगे, इसलिए जो वे कहें वही सही है, या फ़लाँ क़ौम बड़ी तरक़्क़ी कर रही है, उसके तरीक़े इख़तियार करने चाहिएँ, तो ऐसे शख़्स पर ख़ुदा की हिदायत का रास्ता बन्द हो जाता है । क़ुरआन में है—

وَإِنْ تُطِعْ أَكْثَرَ مَنْ فِي الْأَرْضِ يُضِلُّوكَ عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ

अगर तुमने उन बहुत-से लोगों की पैरवी की जो ज़मीन में रहते हैं तो वे तुमको ख़ुदा के रास्ते से भटका देंगे । (कुरआन, 6:116)

यानी आदमी सीधे रास्ते पर उस वक़्त हो सकता है जब उसका एक ख़ुदा हो। सैकड़ों-हज़ारों ख़ुदा जिसने बना लिए हों, और जो कभी इस ख़ुदा के कहे पर और कभी उस ख़ुदा के कहे पर चलता हो, वह रास्ता कहाँ पा सकता है ?

अब आपको मालूम हो गया होगा कि गुमराही के तीन बड़े-बड़े सबब हैं—

एक, नफ़्स और मन की बन्दगी,

दूसरे, बाप-दादा और ख़ानदान और क़बीले के रिवाजों की बन्दगी ।

तीसरे, आम तौर पर दुनिया के लोगों की बन्दगी, जिनमें दौलतमन्द और वक़्त के हाकिम लोग, बनावटी पेशवा और गुमराह क़ौमें, सब ही शामिल हैं ।

ये तीन बड़े-बड़े बुत हैं जो ख़ुदाई के दावेदार बने हुए हैं । जो शख़्स मुसलमान बनना चाहता हो उसको सबसे पहले इन तीनों बुतों को तोड़ना चाहिए । फिर वह हक़ीक़त में मुसलमान हो जाएगा । वरना जिसने ये तीनों बुत अपने दिल में बिठा रखे हों उसका ख़ुदा का बन्दा होना मुशकिल है । वह दिन में पचास वक़्त की नमाज़ें पढ़कर और दिखावे के रोज़े रखकर और मुसलमानों जैसी शक्ल बनाकर इनसानों को धोखा दे सकता है, ख़ुद अपने आपको भी धोखा दे सकता है कि मैं पक्का मुसलमान हूँ, मगर ख़ुदा को धोखा नहीं दे सकता ।

मुसलमानों की हालत

भाइयो ! आज मैंने आपके सामने जिन तीन बुतों का ज़िक्र किया है उनकी बन्दगी असली शिर्क है । आपने पत्थर के बुत छोड़ दिए, ईंट और चूने से बने हुए बुतख़ाने ख़त्म कर दिए, मगर सीनों में जो बुतख़ाने बने हुए हैं उनकी तरफ़ कम ध्यान दिया । सबसे ज़्यादा ज़रूरी, बल्कि मुसलमान होने के लिए पहली शर्त इन बुतों को छोड़ना है । यक़ीन कीजिए कि सारी दुनिया और ख़ुद इस हिन्दुस्तान में मुसलमान जिस क़द्र नुक़सान उठा रहे हैं, वह इन्हीं तीन बुतों की पूजा का नतीजा है । आपकी तबाही, आपकी ज़िल्लत और मुसीबत की जड़ यही तीन चीज़ें हैं जो आपने अभी मुझसे सुनी हैं । दुनिया में मुसलमानों की तादाद बे हद व हिसाब है, मगर शायद ही इन्हें कोई इज़्ज़त व इख़तियार हासिल है । इस हिन्दुस्तान में भी आप की तादाद अच्छी-ख़ासी है, मगर यहाँ आपका कोई वज़न नहीं । कुछ छोटी-छोटी क़ौमों का वज़न आपसे बढ़कर है। इसकी वजह पर भी आपने कभी ग़ौर किया ? इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि नफ़्स की बन्दगी, ख़ानदानी रिवाजों की बन्दगी और ख़ुदा के सिवा दूसरे इनसानों की बन्दगी ने आपकी ताक़त को अन्दर से खोखला कर दिया है ।

ज़ात-पात का फ़र्क़

आपमें राजपूत हैं, मुग़ल हैं, जाट हैं, अफ़ग़ान हैं और बहुत-सी क़ौमें हैं। इस्लाम ने इन सब क़ौमों को एक क़ौम, एक-दूसरे का भाई, एक पक्की दीवार बनने के लिए कहा था, जिसकी ईंट से ईंट जुड़ी हुई हो। मगर आप अब भी वही पुराने जाहिली ख़यालात लिए हुए बैठे हैं। जिस तरह यहाँ के ग़ैर मुसलिमों में अलग-अलग गोत्र हैं। उसी तरह आपमें भी अब तक क़बीले-क़बीले अलग हैं। आपस में मुसलमानों की तरह शादी-ब्याह नहीं, एक-दूसरे से बिरादरी और भाईचारा नहीं। ज़बान से आप एक-दूसरे को मुसलमान भाई कहते हैं, मगर हक़ीक़त में आपके बीच वही सब भेद-भाव हैं, जो इस्लाम से पहले थे। इस भेद-भाव ने आपको एक मज़बूत दीवार नहीं बनने दिया, आपकी एक-एक ईंट अलग है। आप न मिलकर उठ सकते हैं और न मिलकर किसी मुसीबत का सामना कर सकते हैं। अगर इस्लाम की तालीम के मुताबिक़ आपसे कहा जाए कि तोड़ो इस भेद-भाव को और आपस में एक हो जाओ, तो आप क्या कहेंगे ? बस वही एक बात, यानी हमारे बाप-दादा से जो रिवाज चले आ रहे हैं उनको हम नहीं तोड़ सकते। इसका जवाब ख़ुदा की तरफ़ से क्या मिलता है? बस यही कि आप न तोड़ो इन रिवाजों को, न छोड़ो जाहिलाना रस्मों की पैरवी को, हम भी तुमको टुकड़े-टुकड़े कर देंगे और तुम्हारी तादाद बहुत बड़ी होने के बावजूद तुमको रुसवा और बेइज़्ज़त करके दिखाएँगे।

विरासत में हक़-तलफ़ी

अल्लाह ने आपको हुक्म दिया था कि तुम्हारी विरासत में लड़के और लड़कियाँ सब शरीक हैं। आप इसका जवाब क्या देते हैं ? यह कि हमारे बाप-दादा के क़ानून में लड़के और लड़कियाँ शरीक नहीं हैं और यह कि हम ख़ुदा के क़ानून के बजाए बाप-दादा का क़ानून मानते हैं। ख़ुदा के लिए मुझे बताइए क्या इस्लाम इसी का नाम है ? आपसे कहा जाता है कि इस ख़ानदानी क़ानून को तोड़िए। आपमें से हर शख़्स कहता है कि जब सब तोड़ेंगे तो मैं भी तोड़ दूँगा, वरना अगर दूसरों ने लड़की को हिस्सा

न दिया और मैंने दे दिया तो मेरे घर की दौलत तो दूसरों के पास चली जाएगी, मगर दूसरे के घर की दौलत मेरे घर में न आएगी । ग़ौर कीजिए कि इस जवाब के क्या मानी हैं ? क्या ख़ुदा के क़ानून की इताअत इसी शर्त से की जाएगी कि दूसरे इताअत करें तो आप भी करेंगे ? कल आप कहेंगे कि दूसरे ज़िना करेंगे तो मैं भी करूँगा, दूसरे चोरी करेंगे तो मैं भी करूँगा । ग़रज़ दूसरे जब तक सब गुनाह न छोड़ेंगे मैं भी उस वक़्त तक सब गुनाह करता रहूँगा । बात यह है कि इस मामले में तीनों बुतों की इबादत हो रही है । नफ़्स की बन्दगी भी है, बाप-दादा की बन्दगी भी और मुशरिक क़ौमों की बन्दगी भी, और इन तीनों के साथ इस्लाम का दावा भी है ।

यह सिर्फ़ दो मिसालें हैं, वरना आँखें खोलकर देखा जाए तो बेशुमार इसी क़िस्म के रोग आपके अन्दर फैले हुए दिखाई देंगे और इन सबमें आप यही देखेंगे कि कहीं एक बुत की इबादत है, कहीं दो बुतों की और कहीं तीनों बुतों की । जब ये बुत पूजे जा रहे हों और इनके साथ इस्लाम का दावा भी हो तो आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आपपर उन रहमतों की बारिश होगी, जिनका वायदा सच्चे मुसलमानों से किया गया है ?

ईमान की कसौटी

मुसलमान भाइयो! पिछले जुमे के ख़ुतबे में मैंने आपको बताया था कि कुरआन के अनुसार इनसान की गुमराही के तीन सबब हैं—एक यह कि वह ख़ुदा के क़ानून को छोड़कर अपने मन की ख़्वाहिशों का गुलाम बन जाए। दूसरा यह कि ख़ुदाई क़ानून के मुक़ाबिले में अपने ख़ानदान के रस्म-रिवाज और बाप-दादा के तौर-तरीक़ों को तरजीह और प्राथमिकता दे। तीसरा यह कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) ने जो तरीक़ा बताया है उसको छोड़कर इनसानों की पैरवी करने लगे, चाहे वे इनसान ख़ुद उसकी अपनी क़ौम के बड़े लोग हों या ग़ैर क़ौमों के लोग।

मुसलमान की असली पहचान

मुसलमान की असली पहचान यह है कि वह इन तीनों बीमारियों से पाक हो। मुसलमान कहते ही उसको हैं जो ख़ुदा के सिवा किसी का बन्दा और रसूल (सल्ल०) के सिवा किसी का अनुयायी न हो। मुसलमान वह है जो सच्चे दिल से इस बात पर यक़ीन रखता हो कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) की तालीम सरासर हक़ है। इसके ख़िलाफ़ जो कुछ है वह बातिल है और इनसान के लिए दीन व दुनिया की भलाई जो कुछ भी है सिर्फ़ ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) की तालीम में है। इस बात पर पूरा यक़ीन जिस शख़्स को होगा वह अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में सिर्फ़ यह देखेगा कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का क्या हुक्म है, और जब उसे हुक्म मालूम हो जाएगा तो वह सीधी तरह से उसके आगे सिर झुका देगा। फिर चाहे उसका दिल कितना ही तिलमिलाए और ख़ानदान के लोग कितनी ही बातें बनाएँ और दुनियावाले कितनी ही मुख़ालिफ़त करें, वह उनमें से किसी की परवाह न करेगा, क्योंकि हर एक के लिए उसका साफ़ जवाब यही होगा कि मैं ख़ुदा का बन्दा हूँ, तुम्हारा बन्दा नहीं हूँ और मैं रसूल (सल्ल०) पर ईमान लाया हूँ, तुमपर ईमान नहीं लाया हूँ।

निफ़ाक़ की अलामतें

(1) नफ़्स की बंदगी

इसके बरख़िलाफ़ अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल का हुक्म यह है तो हुआ करे, मेरा दिल तो इसको नहीं मानता, मुझे तो इसमें नुक़सान नज़र आता है, इसलिए मैं ख़ुदा और रसूल की बात को छोड़कर अपनी राय पर चलूँगा, तो ऐसे शख़्स का दिल ईमान से ख़ाली होगा। वह मोमिन नहीं बल्कि मुनाफ़िक़ है कि ज़बान से तो कहता है कि मैं ख़ुदा का बन्दा और रसूल का अनुयायी हूँ, मगर हक़ीक़त में अपने नफ़्स का बन्दा और अपनी राय का अनुयायी बना हुआ है।

(2) रस्म व रिवाज की पाबंदी

इसी तरह अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) का हुक्म कुछ भी हो, मगर फ़लाँ बात तो बाप-दादा से होती चली आ रही है, उसको कैसे छोड़ा जा सकता है, या फ़लाँ क़ायदा तो मेरे ख़ानदान या बिरादरी में मुक़र्रर है, उसे कैसे तोड़ा जा सकता है, तो ऐसे शख़्स का शुमार भी मुनाफ़िक़ों में होगा, चाहे नमाज़ें पढ़ते-पढ़ते उसकी पेशानी पर कितना ही बड़ा गट्टा पड़ गया हो और ज़ाहिर में उसने कितनी ही दीनी सूरत बना रखी हो। इसलिए कि दीन की असल हक़ीक़त उसके दिल में उतरी ही नहीं। दीन रुकू और सजदे व रोज़े और हज का नाम नहीं है और न दीन इनसान की सूरत और उसके लिबास में होता है, बल्कि असल में दीन नाम है ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी का। जो शख़्स अपने मामले में ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी से इनकार करता है, उसका दिल हक़ीक़त में दीन से ख़ाली है। उसकी नमाज़ और उसका रोज़ा और उसकी शरअी और दीनी सूरत एक धोखे के सिवा कुछ नहीं।

(3). दूसरी क़ौमों की नक़्क़ाली

इसी तरह अगर कोई शख़्स ख़ुदा की किताब और उसके रसूल की हिदायत से बेपरवाह होकर कहता है कि फ़लाँ बात इसलिए अपनाई जाए कि वह अंग्रेज़ों में राएज है, और फ़लाँ बात इसलिए क़बूल की जाए कि फ़लाँ क़ौम उसकी वजह से तरक़्क़ी कर रही है, और फ़लाँ बात इसलिए मानी जाए कि फ़लाँ बड़ा आदमी ऐसा कहता है तो ऐसे शख़्स को भी

अपने ईमान की ख़ैर मनानी चाहिए। ये बातें ईमान के साथ जमा नहीं हो सकतीं। मुसलमान होना और मुसलमान रहना चाहते हो तो हर उस बात को उठाकर दीवार पर दे मारो जो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) की बात के ख़िलाफ़ हो। अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो इस्लाम का दावा तुम्हें शोभा नहीं देता। ज़बान से कहना कि हम ख़ुदा और रसूल को मानते हैं मगर अपनी ज़िन्दगी के मामलों में हर वक़्त दूसरों की बात के मुक़ाबिले में ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) की बात को रद्द करते रहना, न ईमान है, न इस्लाम; बल्कि इसका नाम मुनाफ़िक़त और कपट है।

क़ुरआन पाक के अठारहवें पारे में अल्लाह तआला ने साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में फ़रमा दिया है—

لَقَدْ اَنْزَلْنَا اٰيٰتٍ مُّبَيِّنٰتٍ ؕ وَاللّٰهُ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ○ وَيَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالرَّسُوْلِ وَاَطَعْنَا ثُمَّ يَتَوَلّٰى فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ؕ وَمَآ اُولٰٓئِكَ بِالْمُؤْمِنِيْنَ○ وَاِذَا دُعُوْٓا اِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ اِذَا فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ مُّعْرِضُوْنَ○ وَاِنْ يَّكُنْ لَّهُمُ الْحَقُّ يَاْتُوْٓا اِلَيْهِ مُذْعِنِيْنَ ؕ اَفِىْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ اَمِ ارْتَابُوْٓا اَمْ يَخَافُوْنَ اَنْ يَّحِيْفَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ وَرَسُوْلُهٗ ؕ بَلْ اُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ○ اِنَّمَا كَانَ قَوْلَ الْمُؤْمِنِيْنَ اِذَا دُعُوْٓا اِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ اَنْ يَّقُوْلُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ○ وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَيَخْشَ اللّٰهَ وَيَتَّقْهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفَآئِزُوْنَ○

यानी, हमने खोल-खोलकर हक़ और बातिल का फ़र्क़ बतानेवाली आयतें उतार दी हैं। अल्लाह जिसको चाहता है इन आयतों के ज़रिए से सीधा रास्ता दिखा देता है। लोग कहते हैं कि हम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाए और हमने इताअत क़बूल की,

फिर इसके बाद इनमें से कुछ लोग इताअत से मुँह मोड़ जाते हैं, ऐसे लोग ईमानवाले नहीं हैं। और जब इनको अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाया जाता है; ताकि रसूल इनके मामलों में (ख़ुदा के क़ानून के मुताबिक़) फ़ैसला करे, तो इनमें से कुछ लोग मुँह मोड़ जाते हैं; अलबत्ता जब बात इनके मतलब की हो तो उसे मान लेते हैं। क्या इन लोगों के दिल में बीमारी है? या क्या ये शक में पड़े हुए हैं? या इनको यह डर है कि अल्लाह और उसका रसूल इनका हक़ मारेगा? बहरहाल वजह कुछ भी हो, ये लोग ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म करनेवाले हैं। हक़ीक़त में जो ईमानवाले हैं उनका तरीक़ा तो यह है कि जब उन्हें अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाया जाए, ताकि रसूल उनके मामलों का फ़ैसला करे तो वे कहें: हमने सुना और माना। ऐसे ही लोग कामयाबी पानेवाले हैं और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की पैरवी करेगा और अल्लाह से डरता रहेगा और उसकी नाफ़रमानी से बचेगा, बस वही कामयाब होगा। (क़ुरआन, 24:46–52)

इन आयतों में ईमान की जो तशरीह की गई है, उसपर ग़ौर कीजिए। असली ईमान यह है कि अपने आपको ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की हिदायत के सुपुर्द कर दें। जो हुक्म वहाँ से मिले, उसके आगे सिर झुका दें और उसके मुक़ाबले में किसी की न सुनें——न अपने दिल की, न ख़ानदानवालों की और न दुनियावालों की। यह कैफ़ियत जिसमें पैदा हो जाए वही मोमिन और मुसलिम है और जो इससे ख़ाली हो उसकी हैसियत मुनाफ़िक़ से ज़्यादा नहीं।

अल्लाह की इताअत की कुछ मिसालें

(1) शराब का त्याग

आपने सुना होगा कि अरब में शराब पीने का कितना ज़ोर था। औरत और मर्द, जवान और बूढ़े सब शराब के रसिया थे, उनको दरअसल शराब से इश्क़-सा था। इसकी तारीफ़ों के गीत गाते थे और इसपर जानें देते थे। यह भी आपको मालूम होगा कि शराब की लत लग जाने के बाद इसका

छूटना कितना मुशकिल होता है। आदमी जान देना क़बूल कर लेता है मगर शराब छोड़ना क़बूल नहीं कर सकता। अगर शराबी को शराब न मिले तो उसकी हालत बीमार से बदतर हो जाती है, लेकिन आपने कभी सुना है कि जब कुरआन पाक में शराब हराम होने का हुक्म आया तो क्या हुआ? वही अरब जो शराब पर जान देते थे, इस हुक्म के सुनते ही उन्होंने अपने हाथ से शराब के मटके तोड़ डाले, मदीने की गलियों में शराब इस तरह बह रही थी जैसे बारिश का पानी बहता है। एक जगह कुछ लोग बैठे शराब पी रहे थे, जिस वक़्त उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर से एलान करनेवाले की आवाज़ सुनी कि शराब हराम कर दी गई तो जिस शख़्स का हाथ जहाँ था वहीं का वहीं रुक गया। जिसके मुँह से प्याला लगा हुआ था, उसने फ़ौरन उसको हटा लिया और फिर एक बूँद हलक़ में न जाने दी—यह है ईमान की शान। इसको कहते हैं ख़ुदा और रसूल की इताअत।

(2) इक़रारे जुर्म

आपको मालूम है कि इस्लाम में ज़िना की सज़ा कितनी सख़्त रखी गई है? नंगी पीठ पर सौ कोड़े। जिनकी कल्पना ही से आदमी के रोंगटे खड़े हो जाएँ... मगर आपने यह भी सुना है कि जिनके दिल में ईमान था उनकी क्या कैफ़ियत थी? एक शख़्स ज़िना कर बैठा। कोई गवाह न था, कोई अदालत तक पकड़कर ले जानेवाला न था, कोई पुलिस को ख़बर करनेवाला न था, सिर्फ़ दिल में ईमान था जिसने उस आदमी से कहा कि जब तूने ख़ुदा के क़ानून के ख़िलाफ़ अपने नफ़्स की ख़्वाहिश पूरी की है तो अब जो सज़ा ख़ुदा ने इस जुर्म के लिए मुक़र्रर की है उसको भुगतने के लिए तैयार हो जा। चुनाँचे वह शख़्स ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होता है और अर्ज़ करता है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने ज़िना किया है, मुझे सज़ा दीजिए। आप मुँह फेर लेते हैं; तो फिर दूसरी तरफ़ आकर यही बात कहता है, आप फिर मुँह फेर लेते हैं तो फिर सामने आकर सज़ा की दरख़्वास्त करता है कि जो मैंने किया है उसकी सज़ा मुझे दी जाए—यह है ईमान। जिसके दिल में ईमान मौजूद है, उसके लिए नंगी पीठ पर सौ कोड़े खाना बल्कि संगसार तक कर दिया जाना आसान है; मगर नाफ़रमान बनकर ख़ुदा के सामने हाज़िर होना मुशकिल।

(3) ताल्लुक़ ख़त्म कर लेना

आपको यह भी मालूम है कि इनसान के लिए दुनिया में अपने रिश्तेदारों से बढ़कर कोई प्यारा नहीं होता, ख़ासकर बाप, भाई, बेटे तो इतने प्यारे होते हैं कि उनपर सब कुछ क़ुरबान कर देना आदमी गवारा कर लेता है। मगर आप ज़रा बद्र और उहुद की लड़ाइयों पर ग़ौर कीजिए कि इनमें कौन किसके ख़िलाफ़ लड़ने गया था? बाप मुसलमानों की फ़ौज में है तो बेटा काफ़िरों की फ़ौज में, या बेटा इस तरफ़ है तो बाप उस तरफ़, एक भाई इधर तो दूसरा भाई उधर। क़रीब से क़रीब रिश्तेदार एक-दूसरे के मुक़ाबिले में आए हैं और इस तरह लड़े हैं कि गोया ये एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं और यह जोश इनमें कुछ रुपये-पैसे या ज़मीन के लिए नहीं भड़का था, न कोई निजी बैर था, बल्कि सिर्फ़ इस वजह से वे अपने ख़ून और अपने गोश्त-पोस्त के ख़िलाफ़ लड़ गए कि वे ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) पर बाप, बेटे, भाई और सारे ख़ानदान को क़ुरबान कर देने की ताक़त रखते थे।

(4) पुराने रस्मो रिवाज से तौबा

आपको यह भी मालूम है कि अरब में जितने पुराने रस्म-रिवाज थे, इस्लाम ने क़रीब-क़रीव उन सभी को तोड़ डाला था। सबसे बड़ी चीज़ तो बुतपरस्ती थी जिसका रिवाज सैकड़ों वर्ष से चला आ रहा था। इस्लाम ने कहा कि इन बुतों को छोड़ दो। शराब, ज़िना, जुआ, चोरी और डाका अरब में मामूली बात थी, इस्लाम ने कहा कि इन सबको छोड़ दो। औरतें अरब में खुली फिरती थीं। इस्लाम ने हुक्म दिया कि परदा करो। औरतों को विरासत में कोई हिस्सा न दिया जाता था। इस्लाम ने कहा कि इनका भी विरासत में हिस्सा है। लैपालक को वही हैसियत दी जाती थी जो सगी औलाद की होती है। इस्लाम ने कहा कि वह सगी औलाद की तरह नहीं है। बल्कि लैपालक अगर अपनी बीवी को छोड़ दे तो उससे निकाह किया जा सकता है। ग़रज़ कि कौन-सी पुरानी रस्म ऐसी थी जिसको तोड़ने का हुक्म इस्लाम ने न दिया हो। मगर आपको मालूम है कि जो लोग ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाए थे उनका क्या तर्ज़े अमल था? सदियों से जिन बुतों को वे और उनके बाप-दादा सज्दा करते और नज़रें चढ़ाया करते थे, उनको इन ईमानवालों ने अपने हाथों से तोड़ा। सैकड़ों साल से जो ख़ानदानी

रस्में चली आ रही थीं उन सबको उन्होंने मिटाकर रख दिया। जिन चीज़ों को वे पाक समझते थे, ख़ुदा का हुक्म पाकर उन्हें पाँवों तले रौंद डाला। जिन चीज़ों को वे नाजायज़ समझते थे, ख़ुदा का हुक्म आते ही उनको जायज़ समझने लगे। जो चीज़ें सदियों से पाक समझी जाती थीं वे एकदम नापाक हो गईं। और जो सदियों से नापाक ख़याल की जाती थीं, वे यकायक पाक हो गईं। कुफ़्र के जिन तरीक़ों में लज़्ज़त और फ़ायदे के सामान थे, ख़ुदा का हुक्म पाते ही उनको छोड़ दिया गया और इस्लाम के जिन हुक्मों की पाबन्दी इनसान पर मुशकिल गुज़रती है उन सबको ख़ुशी-ख़ुशी क़बूल कर लिया गया। इसका नाम है ईमान और इसको कहते हैं इस्लाम। अगर अरब के लोग उस वक़्त कहते कि फ़लाँ बात हम इसलिए नहीं मानते कि हमारा इसमें नुक़सान है और फ़लाँ बात को हम इसलिए नहीं छोड़ते कि इसमें हमारा फ़ायदा है, और फ़लाँ काम को तो हम ज़रूर करेंगे क्योंकि बाप-दादा से यही होता चला आया है, और फ़लाँ बातें रूमियों की हमें पसन्द हैं और फ़लाँ ईरानियों की हमें अच्छी लगती हैं। गरज़ अरब के लोग इसी तरह इस्लाम की एक-एक बात को रद्द कर देते, तो आप समझ सकते हैं कि आज दुनिया में कोई मुसलमान न होता।

ख़ुदा की ख़ुशनूदी का रास्ता

भाइयो! क़ुरआन में आया है—

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ۝

यानी, नेकी का मर्तबा तुमको नहीं मिल सकता जब तक कि तुम अल्लाह की राह में वे चीज़ें ख़र्च न करो, जो तुमको प्यारी हैं।

(क़ुरआन, 3:92)

बस यही आयत इस्लाम और ईमान की जान है। इस्लाम की असल शान यही है कि जो चीज़ें आपको प्यारी हैं, उनको ख़ुदा की ख़ुशी पर क़ुरबान कर दें। ज़िन्दगी के सारे मामलों में आप देखते हैं कि ख़ुदा का हुक्म एक तरफ़ बुलाता है और नफ़्स की ख़्वाहिशें दूसरी तरफ़ बुलाती हैं। ख़ुदा एक काम का हुक्म देता है, नफ़्स कहता है कि इसमें तो तकलीफ़

है या नुक़सान। ख़ुदा एक बात से रोकता है, नफ़्स कहता है कि यह तो बड़ी मज़ेदार चीज़ है, यह तो बड़े फ़ायदे की चीज़ है। एक तरफ़ ख़ुदा की ख़ुशनूदी होती है और दूसरी तरफ़ एक दुनिया की दुनिया खड़ी होती है। ग़रज़ ज़िन्दगी में हर-हर क़दम पर इनसान को दो रास्ते मिलते हैं। एक रास्ता इस्लाम का है और दूसरा कुफ्र और निफ़ाक़ का। जिसने दुनिया की हर चीज़ को ठुकरा कर ख़ुदा के हुक्म के आगे सिर झुका दिया उसने इस्लाम का रास्ता इख़तियार किया और जिसने ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर अपने दिल की या दुनिया की ख़ुशी पूरी की, उसने कुफ्र या निफ़ाक़ का रास्ता इख़तियार किया।

आज का मुसलमान

आज लोगों का हाल यह है कि इस्लाम की जो बात आसान है उसे तो बड़ी ख़ुशी के साथ क़बूल करते हैं, मगर जहाँ कुफ्र और इस्लाम का असली मुक़ाबिला होता है वहीं से रुख़ बदल देते हैं, इस्लाम के बड़े-बड़े दावेदारों में भी यह कमज़ोरी मौजूद है। वे इस्लाम-इस्लाम बहुत पुकारेंगे, उसकी तारीफ़ करते-करते उनकी ज़बान ख़ुश्क हो जाएगी, उसके लिए कुछ दिखावे के काम भी कर देंगे। मगर उनसे कहिए कि यह इस्लाम जिसकी आप इतनी तारीफ़ कर रहे हैं, आइए ज़रा इसके क़ानून को हम-आप ख़ुद अपने ऊपर लागू करें तो वे फ़ौरन कहेंगे कि इसमें फ़लाँ मुशकिल है और फ़लाँ कठिनाई है और इस वक़्त तो इसको बस रहने ही दीजिए। मतलब यह कि इस्लाम एक ख़ूबसूरत खिलौना है, इसको बस ताक़ पर रखिए और दूर से बैठकर इसकी तारीफ़ें किए जाइए, मगर इसे ख़ुद अपनी ज़ात पर और अपने घरवालों और रिश्तेदारों पर और अपने कारोबार और मामलों पर एक क़ानून की हैसियत से लागू करने का नाम तक न लीजिए। यह हमारे आजकल के दीनदारों का हाल है। अब दुनियादारों का तो ज़िक्र ही बेकार है। इसी का नतीजा है कि न अब नमाज़ों में वह असर है जो कभी था, न रोज़ों में है, न कुरआन पढ़ने में और न शरीअत की ज़ाहिरी पाबंदियों में। इसलिए कि जब रूह ही मौजूद नहीं तो निरा बेजान जिस्म क्या करामत दिखाएगा?

इस्लाम की असली कसौटी

'मुसलमान भाइयो! अल्लाह तआला अपनी किताब पाक में फ़रमाता है—

قُلْ إِنَّ صَلَاتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِينَ۝ لَا شَرِيكَ لَهٗ وَبِذٰلِكَ أُمِرْتُ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُسْلِمِينَ۝

यानी, (ऐ मुहम्मद सल्ल०) कहो, मेरी नमाज़ और मेरी इबादत के सारे तरीक़े और मेरा जीना और मेरा मरना सब कुछ अल्लाह के लिए है जो सारी कायनात का मालिक है, उसका कोई शरीक नहीं और इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और सबसे पहले मैं उसकी फ़रमाँबरदारी में सिर झुकानेवाला हूँ।

(क़ुरआन, 6:162–163)

इस आयत की तशरीह नबी (सल्ल०) के इस इरशाद से होती है—

مَنْ أَحَبَّ لِلّٰهِ وَأَبْغَضَ لِلّٰهِ وَأَعْطٰى لِلّٰهِ وَمَنَعَ لِلّٰهِ فَقَدِ اسْتَكْمَلَ الْإِيمَانَ.

जिसने किसी से दोस्ती व मुहब्बत की तो अल्लाह के लिए, और दुशमनी की तो अल्लाह के लिए, और किसी को दिया तो अल्लाह के लिए और किसी से रोका तो अल्लाह के लिए, उसने अपने ईमान को पूरा कर लिया, यानी वह पूरा मोमिन हो गया।

अब जो आयत मैंने आपके सामने पेश की है, उससे मालूम होता है कि इस्लाम का तक़ाज़ा यह है कि इनसान अपनी बन्दगी और अपने जीने और मरने को सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ालिस कर ले और अल्लाह के सिवा किसी को इसमें शरीक न करे यानी न उसकी बन्दगी अल्लाह के सिवा किसी और के लिए हो और न उसका जीना और मरना।

इसकी जो तशरीह नबी (सल्ल०) की ज़बान से मैंने आपको सुनाई है,

उससे मालूम होता है कि आदमी की मुहब्बत और दुशमनी और अपनी दुनियवी ज़िन्दगी के मामलों में उसका लेन-देन सिर्फ़ ख़ुदा के लिए होना ईमान का ऐन तक़ाज़ा है। इसके बग़ैर ईमान ही पूरा नहीं हुआ, ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खुल सकना तो दूर की बात है। जितनी कमी इस मामले में होगी, उतनी ही कमी आदमी के ईमान में होगी और जब इस हैसियत से आदमी पूरे तौर पर अल्लाह का हो जाए तब कहीं उसका ईमान मुकम्मल होता है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि इस क़िस्म की चीज़ें सिर्फ़ ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खोलती हैं, वरना ईमान और इस्लाम के लिए इनसान के अन्दर यह कैफ़ियत पैदा होना शर्त नहीं है। यानी दूसरे लफ़्ज़ों में इस कैफ़ियत के बिना भी इनसान मोमिन व मुसलिम हो सकता है, मगर यह एक ग़लतफ़हमी है और इस ग़लतफ़हमी के पैदा होने की वजह यह है कि आम तौर पर लोग फ़िक़्ही और क़ानूनी इस्लाम और उस हक़ीक़ी इस्लाम में जो अल्लाह के यहाँ मोतबर है, फ़र्क़ नहीं करते।

क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़

क़ानूनी इस्लाम

फ़िक़्ही और क़ानूनी इस्लाम में आदमी के दिल का हाल नहीं देखा जाता और न ही देखा जा सकता, बल्कि सिर्फ़ उसके ज़बानी इक़रार को और इस चीज़ को देखा जाता है कि वह अपने अन्दर उन ज़रूरी निशानियों को ज़ाहिर करता है या नहीं, जो ज़बानी इक़रार की पुख़्तगी के लिए ज़रूरी हैं। अगर किसी शख़्स ने ज़बान से अल्लाह और रसूल और क़ुरआन और आख़िरत और ईमान की दूसरी बातों को मानने का इक़रार कर लिया और इसके बाद ज़रूरी शर्तें भी पूरी कर दीं, जिनसे उसके मानने का सबूत मिलता है, तो वह इस्लाम के दायरे में शामिल कर लिया जाएगा और सारे मामले उसके साथ मुसलमान समझकर किए जाएँगे, लेकिन यह चीज़ सिर्फ़ दुनिया के लिए है और दुनियवी हैसियत से वह क़ानूनी और तमद्दुनी बुनियाद जुटाती है जिसपर मुसलिम सोसाइटी की तामीर की गई है। इसका हासिल इसके सिवा कुछ नहीं है कि ऐसे इक़रार के साथ जितने लोग मुसलिम

सोसाइटी में दाख़िल हों, वे सब मुसलमान माने जाएँ, इनमें से किसी को काफ़िर न ठहराया जाए, इनको एक-दूसरे पर शरई, क़ानूनी, अख़लाक़ी और समाजी हक़ हासिल हों, उनके बीच शादी-ब्याह के ताल्लुक़ात क़ायम हों, जायदाद तक़सीम हो और दूसरे तमद्दुनी रवाबित वुजूद में आएँ।

हक़ीक़ी इस्लाम

लेकिन आख़िरत में इनसान की नजात और उसका मुसलिम व मोमिन क़रार दिया जाना और अल्लाह के मक़बूल बन्दों में गिना जाना इस क़ानूनी इक़रार पर मुनहसर नहीं है, बल्कि वहाँ असल चीज़ आदमी का क़ल्बी इक़रार, उसके दिल का झुकाव और उसका राज़ी-ख़ुशी अपने आपको पूरे तौर पर ख़ुदा के हवाले कर देना है। दुनिया में जो ज़बानी इक़रार किया जाता है, वह तो सिर्फ़ शरई क़ाज़ी के लिए और आम इनसानों और मुसलमानों के लिए है, क्योंकि वे सिर्फ़ ज़ाहिर ही को देख सकते हैं। मगर अल्लाह आदमी के दिल को और उसके बातिन को देखता है और उसके ईमान को नापता है। उसके यहाँ आदमी को जिस हैसियत से जाँचा जाएगा, वह यह है कि क्या उसका जीना और मरना और उसकी वफ़ादारियाँ और उसकी फ़रमाँबरदारी व बन्दगी और उसकी ज़िन्दगी का पूरा कारनामा अल्लाह के लिए था या किसी और के लिए? अगर अल्लाह के लिए था तो वह मुसलिम और मोमिन क़रार पाएगा, और अगर किसी और के लिए था तो न वह मुसलिम होगा, न मोमिन। इस हैसियत से जो जितना कच्चा निकलेगा, उतना ही उसका ईमान और इस्लाम कच्चा होगा, भले ही दुनिया में उसकी गिनती बड़े से बड़े मुसलमानों में होती रही हो और उसे कितने ही बड़े दर्जे दिए गए हों। अल्लाह के यहाँ क़द्र सिर्फ़ इस चीज़ की है कि जो कुछ उसने आपको दिया है, वह सब कुछ आपने उसकी राह में लगा दिया या नहीं। अगर आपने ऐसा कर दिया तो आपको वही हक़ दिया जाएगा जो वफ़ादारों और बन्दगी के हक़ अदा करनेवालों को दिया जाता है। और अगर आपने किसी चीज़ को अल्लाह की बन्दगी से अलग करके रखा तो आपका यह इक़रार कि आप मुसलिम हुए यानी यह कि आपने अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के हवाले कर दिया, सिर्फ़ एक झूठा इक़रार होगा जिससे दुनिया के लोग धोखा खा सकते हैं, जिससे धोखा खाकर

मुसलिम सोसायटी आपको अपने अन्दर जगह दे सकती है, जिससे दुनिया में आपको मुसलमानों के से सारे हुक़ूक़ मिल सकते हैं, लेकिन इससे धोखा खाकर अल्लाह अपने यहाँ आपको वफ़ादारों में जगह नहीं दे सकता।

यह क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़ जो मैंने आपके सामने बयान किया है, अगर आप इसपर ग़ौर करें तो आपको मालूम होगा कि इसके नतीजे सिर्फ़ आख़िरत ही में अलग-अलग नहीं होंगे, बल्कि दुनिया में भी एक बड़ी हद तक अलग-अलग हैं। दुनिया में जो मुसलमान पाए गए हैं या आज पाए जाते हैं, इन सबको दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है—

मुसलमानों की दो क़िस्में

(1) जुज़वी (आंशिक) मुसलमान

एक क़िस्म के मुसलमान वे जो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का इक़रार करके इस्लाम को अपना मज़हब समझकर मान लें, मगर अपने इस मज़हब को अपनी कुल ज़िन्दगी का सिर्फ़ एक हिस्सा और एक शोबा ही बनाकर रखें। इस ख़ास हिस्से और शोबे में इस्लाम के साथ अक़ीदत हो, इबादत गुज़ारियाँ हों, तसबीह व मुसल्ला हो, ख़ुदा का ज़िक्र हो, खाने-पीने और कुछ समाजी मामलों में परहेज़गारियाँ हों और वह सब कुछ हो जिसे मज़हबी काम और तरीक़ा कहा जाता है, मगर इस शोबे के सिवा उनकी ज़िन्दगी के तमाम दूसरे पहलू उनके मुसलिम होने की हैसियत से अलग हों। वे मुहब्बत करें तो अपने नफ़्स या अपने मफ़ाद या अपने मुल्क व क़ौम या किसी और की ख़ातिर करें। वे दुशमनी करें और किसी से जंग करें तो वह भी ऐसे ही किसी दुनियवी या नफ़्सानी ताल्लुक़ की बिना पर करें। उनके कारोबार, उनके लेन-देन, उनके मामले और ताल्लुक़ात, उनका अपने बाल-बच्चों, अपने ख़ानदान, अपनी सोसायटी और अपने मामला करनेवाले लोगों के साथ बरताव सबका सब एक बड़ी हद तक दीन से आज़ाद और दुनियवी हैसियतों पर आधारित हो। एक ज़मींदार की हैसियत से, एक व्यापारी की हैसियत से, एक हुक्मराँ की हैसियत से, एक सिपाही की हैसियत से, एक पेशेवर की हैसियत से उनकी अपनी एक मुस्तक़िल हैसियत हो, जिसका उनके मुसलमान होने की हैसियत से कोई ताल्लुक़

न हो। फिर इस क़िस्म के लोग मिलकर इजतिमाई तौर पर जो तमद्दुनी, तालीमी और सियासी इदारे क़ायम करें, वे भी उनके मुसलमान होने की हैसियत से चाहे बहुत कम मुतास्सिर हों या जुड़े हों, लेकिन सच तो यह है कि उनको इस्लाम से कोई ताल्लुक़ न हो।

(2) पूरे मुसलमान

दूसरी क़िस्म के मुसलमान वे हैं जो अपनी पूरी शख़सियत को और अपने सारे वुजूद को इस्लाम के अन्दर पूरी तरह दे दें। उनकी सारी हैसियतें उनके मुसलमान होने की हैसियत में गुम हो जाएँ। वे बाप हों तो मुसलमान की हैसियत से, बेटे हों तो मुसलमान होने की हैसियत से, शौहर या बीवी हों तो मुसलमान की हैसियत से, व्यापारी, ज़मींदार, मज़दूर, मुलाज़िम या पेशेवर हों तो मुसलमान की हैसियत से। उनके जज़्बे, उनकी ख़्वाहिशें, उनके नज़रियात, उनके ख़यालात उनकी राएँ, उनकी नफ़रत और मुहब्बत, उनकी पसन्द और नापसन्द सब कुछ इस्लाम के ताबे हो। उनके दिल व दिमाग़ पर, उनकी आँखों और कानों पर, उनके पेट और उनकी शर्मगाहों पर और उनके हाथ-पाँव और उनके जिस्म व जान पर इस्लाम का पूरा क़बज़ा हो। न उनकी मुहब्बत इस्लाम से आज़ाद हो, न दुशमनी। जिससे मिलें तो इस्लाम के लिए मिलें और जिससे लड़ें तो इस्लाम के लिए लड़ें। किसी को दें तो इसलिए दें कि इस्लाम का तक़ाज़ा यही है कि उसे दिया जाए और किसी से रोकें तो इसलिए रोकें कि इस्लाम यही कहता है कि उससे रोका जाए और उनका यह तरीक़ा सिर्फ़ उनकी निजी और इनफ़िरादी ज़िन्दगी तक ही न हों, बल्कि उनका सामूहिक और इजतिमाई जीवन भी सरासर इस्लाम की बुनियाद ही पर क़ायम हो। एक जमाअत की हैसियत से उनकी हस्ती सिर्फ़ इस्लाम के लिए क़ायम हो और उनका सारा सामूहिक बरताव इस्लाम के उसूलों पर ही मबनी हो।

ख़ुदा का मतलूब मुसलमान

ये दो क़िस्म के मुसलमान, हक़ीक़त में बिलकुल एक-दूसरे से अलग हैं, चाहे क़ानूनी हैसियत से दोनों एक ही उम्मत में शामिल हों और दोनों के लिए मुसलमान लफ़्ज समान रूप से इस्तेमाल किया जाता हो। पहली

क़िस्म के मुसलमानों का कोई कारनामा इस्लामी तारीख़ में ज़िक्र के क़ाबिल या फ़ख़्र के क़ाबिल नहीं है। उन्होंने हक़ीक़त में कोई ऐसा काम नहीं किया है, जिसने दुनिया की तारीख़ पर कोई इस्लामी नक़्श छोड़ा हो। ज़मीन ने ऐसे मुसलमानों का बोझ कभी महसूस नहीं किया है। इस्लाम का अगर पतन हुआ है तो ऐसे ही लोगों की बदौलत हुआ है। ऐसे ही मुसलमानों की ज़्यादती मुसलिम सोसायटी में हो जाने का नतीजा इस शक्ल में निकला कि दुनिया के निज़ामे ज़िन्दगी की बागें कुफ़्र के क़बज़े में चली गईं और मुसलमान उसके मातहत रहकर सिर्फ़ एक महदूद मज़हबी ज़िन्दगी की आज़ादी ही को काफ़ी समझने लगे। अल्लाह को ऐसे मुसलमान हरगिज़ नहीं चाहिए थे। उसने अपने नबियों को दुनिया में इसलिए नहीं भेजा था, न अपनी किताबें इसलिए उतारी थीं कि सिर्फ़ इस तरीक़े के मुसलमान दुनिया में बना डाले जाएँ। दुनिया में ऐसे मुसलमानों के न होने से किसी हक़ीक़ी क़द्र व क़ीमत रखनेवाली चीज़ की कमी न थी, जिसे पूरा करने के लिए वह्य व नुबुव्वत के सिलसिले को जारी करने की ज़रूरत पेश आती। हक़ीक़त में अल्लाह को जिस तरह के मुसलमान चाहिएँ, जिन्हें तैयार करने के लिए नबी भेजे गए और किताबें उतरी हैं और जिन्होंने इस्लामी नुक़्तए नज़र से भी कोई क़ाबिले क़द्र काम किया है या आज कर सकते हैं, वे सिर्फ़ दूसरी ही क़िस्म के मुसलमान हैं।

हक़ीक़ी पैरवी ग़लबे का सबब है

यह चीज़ सिर्फ़ इस्लाम ही के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि दुनिया में किसी मसलक का झण्डा भी ऐसी पैरवी करनेवालों के हाथों कभी बुलंद नहीं हुआ है, जिन्होंने अपने मसलक के इक़रार और उसके उसूलों की पाबन्दी को अपनी कुल ज़िन्दगी के साथ सिर्फ़ ज़मीमा (परिशिष्ट) बनाकर रखा हो और जिनका जीना और मरना अपने मसलक के सिवा किसी और चीज़ के लिए हो। आज भी आप देख सकते हैं कि एक मसलक के हक़ीक़ी और सच्ची पैरवी करनेवाले सिर्फ़ वही लोग होते हैं जो दिल व जान से उसके वफ़ादार हैं, जिन्होंने अपनी पूरी शख़सियत को उसमें गुम कर दिया है और जो अपनी किसी चीज़ को, यहाँ तक कि अपनी जान और अपनी

औलाद तक को, उसके मुक़ाबिले में अज़ीज़ नहीं रखते। दुनिया का हर मसलक ऐसे ही पैरवी करनेवालों को माँगता है और अगर किसी मसलक को ग़लबा नसीब हो सकता है, तो वह सिर्फ़ ऐसी पैरवी करनेवालों की बदौलत हो सकता है।

मुसलमान ख़ालिस अल्लाह का वफ़ादार

अलबत्ता इस्लाम में और दूसरे मसलकों में फ़र्क़ यह है कि दूसरे मसलक अगर इनसानों से इस तरह की फ़नाइयत और फ़िदाइयत और वफ़ादारी माँगते हैं, तो यह हक़ीक़त में इनसान पर उनका हक़ नहीं है, बल्कि यह उनका इनसान से एक बेजा मुतालबा है। इसके ख़िलाफ़ इस्लाम अगर इनसान से इसकी माँग करता है तो यह उसका ऐन हक़ है। वे जिन चीज़ों के लिए इनसान से कहे कि तू अपने आपको और अपनी ज़िन्दगी को और अपनी पूरी शख़सियत को उनपर तज दे, उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जिसका हक़ीक़त में इनसान पर यह हक़ हो कि उसकी ख़ातिर इनसान अपनी किसी चीज़ को क़ुरबान करे। लेकिन इस्लाम जिस ख़ुदा के लिए इनसान से यह क़ुरबानी माँगता है, वह हक़ीक़त में इसका हक़ रखता है कि उसपर सब कुछ क़ुरबान कर दिया जाए। आसमान और ज़मीन में जो कुछ है, अल्लाह का है। इनसान ख़ुद अल्लाह का है, जो कुछ इनसान के पास है, जो कुछ इनसान के अन्दर है, सब अल्लाह का है और जिन चीज़ों से इनसान दुनिया में काम लेता है, वे सब भी अल्लाह की हैं। इसलिए इनसाफ़ का यही तक़ाज़ा है और अक़्ल का भी यही तक़ाज़ा है कि जो कुछ अल्लाह का है, वह अल्लाह ही के लिए हो, दूसरों के लिए या ख़ुद अपने फ़ायदे और अपने नफ़्स की पसन्द के लिए इनसान जो क़ुरबानी भी करता है, वह दरअसल एक ख़ियानत है, अलावा इसके कि वह ख़ुदा की इजाज़त से हो, और ख़ुदा के लिए जो क़ुरबानी करता है, हक़ीक़त में वह हक़ का अदा करना है।

लेकिन इस पहलू से हटकर भी मुसलमानों के लिए उन लोगों के तरीक़ों में एक बड़ा सबक़ है जो अपने झूठे मसलकों के लिए और अपने नफ़्स के झूठे माबूदों के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान कर रहे हैं और उस इसतिक़ामत

का सबूत दे रहे हैं, जिसकी नज़ीर मुशकिल ही से इनसानी तरीख़ों में मिलती है। कितनी अजीब बात होगी अगर बातिल के लिए इनसानों से ऐसी कुछ फ़िदाइयत और फ़नाइयत ज़हूर में आए और हक़ के लिए उसका हज़ारवाँ हिस्सा भी न हो सके।

नफ़्स की जाँच

ईमान व इस्लाम की यह कसौटी जो इस आयत और इस हदीस में बयान हुई है, मैं चाहता हूँ कि हम सब अपने आपको इसपर परखकर देखें और इसकी रौशनी में अपने को जाँचें। अगर आप कहते हैं कि आपने इस्लाम क़बूल किया और ईमान ले आए तो देखिए कि क्या सचमुच में आपका जीना और मरना ख़ुदा के लिए है? क्या आप इसी लिए जी रहे हैं और आपके दिल व दिमाग़ की सारी क़ाबिलियतें, आपके जिस्म और जान की सारी ताक़तें, आपका वक़्त और आपकी मेहनतें क्या इसी कोशिश में लग रही हैं कि ख़ुदा की मरज़ी आपके हाथों पूरी हो और आपके ज़रिए से वह काम अंजाम पाए जो ख़ुदा अपनी मुसलिम उम्मत से लेना चाहता है? फिर क्या आपने अपनी इताअत और बन्दगी को ख़ुदा ही के लिए ख़ास कर दिया है? क्या नफ़्स की बन्दगी, ख़ानदान की, बिरादरी की, दोस्तों की, सोसायटी की और हुकूमत की बन्दगी, आपकी ज़िन्दगी से बिलकुल ख़ारिज हो चुकी है? क्या आपने अपनी पसन्द और नापसन्द को पूरी तरह अल्लाह की ख़ुशी के अधीन कर दिया है? फिर देखिए कि आप वाक़ई जिससे मुहब्बत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? जिससे नफ़रत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? और इस नफ़रत और मुहब्बत में आपकी नफ़्सानियत का कोई हिस्सा शामिल नहीं है? फिर क्या आपका देना और रोकना भी ख़ुदा के लिए हो चुका है? अपने पेट और अपने नफ़्स समेत दुनिया में आप जिसको जो कुछ दे रहे हैं क्या इसलिए दे रहे हैं कि अल्लाह ने उसका हक़ मुक़र्रर किया है और उसको देने से सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी आपको मतलूब है? और इसी तरह जिससे आप जो कुछ रोक रहे हैं, वह भी इसी लिए रोक रहे हैं कि अल्लाह ने उसे रोकने का हुक्म दिया है और उसके रोकने में आपको अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल होने की तमन्ना है? अगर आप यह कैफ़ियत अपने अन्दर पाते हैं तो अल्लाह का

शुक्र अदा कीजिए कि उसने आप पर ईमान की नेमत पूरी कर दी, और अगर इस हैसियत से आप अपने अन्दर कमी महसूस करते हैं तो सारी फ़िक्रें छोड़कर बस इसी कमी को पूरा करने की फ़िक्र कीजिए और तमाम कोशिशों और मेहनतों को इसी पर केन्द्रित कर दीजिए, क्योंकि इसी कमी के पूरा होने पर दुनिया में आपकी भलाई और आख़िरत में आपकी निजात का दारोमदार है। आप दुनिया में चाहे कुछ भी हासिल कर लें, उसके हुसूल से उस नुक़सान की तलाफ़ी नहीं हो सकती जो इस कमी की बदौलत आपको पहुँचेगा। लेकिन अगर यह कमी आप ने पूरी कर ली तो चाहे आपको दुनिया में कुछ हासिल न हो, फिर भी आप घाटे में न रहेंगे।

यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए नहीं है कि इसपर आप दूसरों को परखें और उनके मोमिन या मुनाफ़िक़ और मुसलिम या काफ़िर होने का फ़ैसला करें। बल्कि यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए है कि आप उसपर ख़ुद अपने आपको परखें और आख़िरत की अदालत में जाने से पहले अपना खोट मालूम करके यहीं उसे दूर करने की फ़िक्र करें। आपको फ़िक्र इस बात की न होनी चाहिए कि दुनिया में मुफ़्ती और क़ाज़ी आपको क्या क़रार देते हैं, बल्कि इसकी होनी चाहिए कि 'अह्कमुल हाकिमीन' और 'आलिमुल ग़ैबि वश्शहादति' आपको क्या क़रार देगा। आप इसपर मुतमइन न हों कि यहाँ आपका नाम मुसलमानों के रजिस्टर में लिखा है, फ़िक्र इस बात की कीजिए कि अल्लाह के दफ़्तर में आप क्या लिखे जाते हैं? सारी दुनिया भी आपको इस्लाम और ईमान की सनद दे दे तो कुछ हासिल नहीं। फ़ैसला जिस ख़ुदा के हाथ में है उसके यहाँ मुनाफ़िक़ के बजाए मोमिन, नाफ़रमान के बजाए फ़रमाँबरदार और बेवफ़ा की जगह वफ़ादार क़रार पाना असल कामयाबी है।

ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी किसलिए ?

मुसलमान भाइयो! पिछले कई ख़ुतबों से मैं आपके सामने बार-बार एक ही बात बयान कर रहा हूँ कि इस्लाम अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी का नाम है और आदमी मुसलमान बन ही नहीं सकता, जब तक कि वह अपनी ख़्वाहिशों की, रस्म-रिवाज की, दुनिया के लोगों की, ग़रज़ हर एक की फ़रमाँबरदारी छोड़कर अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी न करे।

आज मैं आपके सामने यह बयान करना चाहता हूँ कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी पर इस क़द्र ज़ोर आख़िर क्यों दिया जाता है। कोई आदमी पूछ सकता है कि क्या ख़ुदा हमारी इताअत का मोहताज है, ख़ुदा की पनाह कि वह हमसे इस तरह अपनी और अपने रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी की माँग करता है? अल्लाह पनाह में रखे, क्या ख़ुदा दुनिया के हाकिमों की तरह अपनी हुकूमत चलाने की हवस रखता है कि जैसे दुनिया के हाकिम कहते हैं कि हमारी फ़रमाँबरदारी करो उसी तरह ख़ुदा भी कहता है कि मेरी फ़रमाँबरदारी करो? आज मैं इसी का जवाब देना चाहता हूँ।

अल्लाह की इताअत में ही इनसान की फ़लाह है

असल बात यह है कि अल्लाह तआला जो इनसान से फ़रमाँबरदारी की माँग करता है वह इनसान ही की भलाई के लिए करता है, वह दुनिया के हाकिमों की तरह नहीं है। दुनिया के हाकिम अपने फ़ायदे के लिए लोगों को अपनी मरज़ी का ग़ुलाम बनाना चाहते हैं, मगर अल्लाह तमाम फ़ायदों से बेनियाज़ है, उसको आपसे टैक्स लेने की ज़रूरत नहीं है, उसे कोठियाँ बनाने और मोटरें ख़रीदने और आपकी कमाई से अपने ऐश के सामान इकट्ठा करने की ज़रूरत नहीं है। वह पाक है, किसी का मुहताज नहीं। दुनिया में सब कुछ उसी का है, सारे ख़ज़ानों का वही मालिक है। वह

आपसे सिर्फ़ इसलिए फ़रमाँबरदारी की माँग करता है कि उसे आप ही की भलाई मंज़ूर है। वह नहीं चाहता कि जिस मख़लूक़ को उसने सारी मख़लूक़ में अफ़ज़ल बनाया है वह शैतान की ग़ुलाम बनकर रहे, या किसी इनसान की ग़ुलाम हो, या तुच्छ हसतियों के सामने सिर झुकाए। वह नहीं चाहता कि जिस मख़लूक़ को उसने ज़मीन पर अपनी ख़िलाफ़त दी है वह जिहालत के अँधेरों में भटकती फिरे और जानवरों की तरह अपनी ख़्वाहिशों की बन्दगी करके जहन्नम के सबसे नीचे तबक़े में जा गिरे। इसलिए वह फ़रमाता है कि तुम हमारी फ़रमाँबरदारी करो, हमने अपने रसूलों के ज़रिए से जो रौशनी भेजी है उसको लेकर चलो, फिर तुमको सीधा रास्ता मिल जाएगा और तुम उस रास्ते पर चलकर दुनिया में भी इज़्ज़त हासिल कर सकोगे और आख़िरत में भी। क़ुरआन में है—

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ قف لا قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَىِّ ج فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْ بِاللّٰهِ فَقَدِاسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ق لَاانْفِصَامَ لَهَا ط وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ط اَللّٰهُ وَلِىُّ الَّذِيْنَ آمَنُوْا ط يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمَاتِ اِلَى النُّوْرِ ط وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْآ اَوْلِيَآؤُهُمُ الطَّاغُوْتُ لا يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ اِلَى الظُّلُمٰتِ ط اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ج هُمْ فِيْهَا خَالِدُوْنَ ۝

यानी, दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं है, हिदायत का सीधा रास्ता जिहालत के टेढ़े रास्तों से अलग करके साफ़-साफ़ दिखा दिया गया है। अब तुम में से जो कोई झूठे ख़ुदाओं और गुमराह करनेवाले आक़ाओं को छोड़कर एक अल्लाह पर ईमान ले आया, उसने ऐसी मज़बूत रस्सी थाम ली जो टूटनेवाली नहीं है और अल्लाह सब कुछ सुनने और जाननेवाला है। जो लोग ईमान लाएँ उनका निगहबान अल्लाह है, वह उनको अँधेरों से निकालकर रौशनी में ले जाता है और जो लोग कुफ़्र का तरीक़ा अपनाएँ उनके निगहबान उनके झूठे ख़ुदा और गुमराह करनेवाले आक़ा हैं, वह उनको रौशनी से निकाल कर अँधेरों में ले जाते हैं। वे दोज़ख़ में जानेवाले हैं

जहाँ वे हमेशा रहेंगे। (क़ुरआन, 2:256-257)

ग़ैरुल्लाह की इताअत — गुमराही

अब देखिए कि अल्लाह तआला के सिवा दूसरों की इताअत से आदमी अँधेरे में क्यों चला जाता है और इसकी क्या वजह है कि रौशनी सिर्फ़ अल्लाह ही की फ़रमाँबरदारी से मिल सकती है।

आप देखते हैं कि इस दुनिया में आपकी ज़िन्दगी बेशुमार रिश्तों से जकड़ी हुई है। सबसे पहला रिश्ता तो आपका अपने जिस्म के साथ है। ये हाथ, ये पाँव, ये आँखें, ये कान, यह ज़बान, यह दिल व दिमाग़, यह पेट सब आपकी सेवा के लिए अल्लाह ने आपको दिए हैं। आपको यह फ़ैसला करना है कि इनसे किस तरह काम लें, पेट को क्या खिलाएँ और क्या न खिलाएँ? हाथों से क्या काम लें और क्या न लें? पाँवों को किस रास्ते पर चलाएँ और किस रास्ते पर न चलाएँ? आँख और कान से किस तरह के काम लें और किस तरह के न लें? ज़बान को किन बातों के लिए इस्तेमाल करें? दिल में कैसे ख़यालात रखें? दिमाग़ से कैसी बातें सोचें? इन सब ख़ादिमों से आप अच्छे काम भी ले सकते हैं और बुरे भी। यह आपको ऊँचे दर्जे का इनसान भी बना सकते हैं और जानवरों से बदतर दर्जे में भी पहुँचा सकते हैं।

फिर आपका रिश्ता अपने घर के लोगों से भी है। बाप, माँ, बहन, भाई, बीवी, औलाद और दूसरे रिश्तेदार हैं, जिनसे आपका रात-दिन का वास्ता है। यहाँ आपको यह फ़ैसला करना है कि इनसे आप किस तरह का बरताव करें? उनपर आपके क्या हक़ हैं और आप पर उनके क्या हक़ हैं? उनके साथ ठीक-ठीक बरताव करने ही पर दुनिया और आख़िरत में आपकी राहत, ख़ुशी और कामयाबी का दारोमदार है। अगर आप ग़लत बरताव करेंगे तो दुनिया को अपने लिए जहन्नम बना लेंगे और दुनिया ही में नहीं, बल्कि आख़िरत में भी ख़ुदा के सामने सख़्त जवाबदेही आपको करनी होगी।

फिर आपके ताल्लुक़ात दुनिया के बेशुमार लोगों से हैं, कुछ लोग आपके पड़ोसी हैं, कुछ आपके दोस्त हैं, कुछ आपके दुशमन हैं, बहुत-से वे लोग

भी हैं जो आपकी ख़िदमत करते हैं और बहुत-से वे लोग भी हैं जिनकी आप ख़िदमत करते हैं, किसी से आपको कुछ लेना है और किसी को कुछ देना, कोई आपपर भरोसा करके अपने काम आपके सुपुर्द करता है, किसी पर आप ख़ुद भरोसा करके अपने काम उसके सुपुर्द करते हैं। कोई आपका हाकिम है और किसी के आप हाकिम हैं। ग़रज़ इतने आदमियों के साथ आपको रात-दिन किसी न किसी क़िस्म का मामला पेश आता है, जिनका आप शुमार नहीं कर सकते, दुनिया में आपकी ख़ुशी, आपकी कामयाबी, आपकी इज़्ज़त और नेकनामी का सारा दारोमदार इसपर है कि वे सारे ताल्लुक़ात जो मैंने आपके सामने बयान किए हैं सही और दुरुस्त हों। इसी तरह आख़िरत में ख़ुदा के यहाँ भी आप सिर्फ़ उसी वक़्त कामयाब हो सकते हैं कि जब अपने मालिक के सामने आप हाज़िर हों तो इस हाल में न जाएँ कि किसी का हक़ आपने मार रखा हो, किसी पर ज़ुल्म किया हो, कोई आपके ख़िलाफ़ वहाँ नालिश करे, किसी की ज़िन्दगी ख़राब करने का वबाल आपके सिर पर हो, किसी की इज़्ज़त या जान या माल को आपने नाजायज़ तौर पर नुक़सान पहुँचाया हो। अतः आपको यह फ़ैसला करने की भी ज़रूरत है कि इन बेशुमार ताल्लुक़ात को दुरुस्त किस तरह रखा जाए और इनको ख़राब करनेवाले तरीक़े कौन-से हैं, जिनसे बचा जाए।

अब आप ग़ौर कीजिए कि अपने जिस्म से, अपने घरवालों से और दूसरे तमाम लोगों से सही ताल्लुक़ रखने के लिए आपको हर-हर क़दम पर इल्म की रौशनी दरकार है, क़दम-क़दम पर आपको यह मालूम होने की ज़रूरत है कि सही क्या है और ग़लत क्या है? हक़ क्या है और बातिल क्या है? इनसाफ़ क्या है और ज़ुल्म क्या? किसका हक़ आपपर कितना है और किसपर आपका हक़ कितना है? किस चीज़ में हक़ीक़ी फ़ायदा है और किस चीज़ में हक़ीक़ी नुक़सान है? यह इल्म अगर आप ख़ुद अपने नफ़्स के पास तलाश करेंगे तो वहाँ यह न मिलेगा। इसलिए कि नफ़्स तो ख़ुद जाहिल है, उसके पास ख़्वाहिशों के सिवा धरा क्या है? वह तो कहेगा कि शराब पियो, ज़िना करो, हराम खाओ, क्योंकि इनमें बड़ा मज़ा है। वह तो कहेगा कि सबका हक़ मार खाओ और किसी का हक़ अदा न करो, क्योंकि इसमें फ़ायदा ही फ़ायदा है, ले लिया सब कुछ और दिया कुछ नहीं। वह तो कहेगा कि सबसे अपना मतलब निकालो और किसी

के कुछ काम न आओ, क्योंकि इसमें फ़ायदा भी है और आराम भी। ऐसे जाहिल के हाथ में जब आप अपने आपको देंगे तो वह आपको नीचे की तरफ़ ले जाएगा, यहाँ तक कि आप इनतिहा दरजे के ख़ुदग़रज़, बदनफ़्स और बदकार हो जाएँगे और आपकी दुनिया और दीन दोनों ख़राब होंगे।

दूसरी सूरत यह है कि आप अपने नफ़्स के बजाए अपने ही जैसे दूसरे इनसानों पर भरोसा करें और अपनी लगाम उनके हाथ में दे दें कि जिधर वे चाहें उधर ले जाएँ। इस सूरत में यह ख़तरा है कि एक ख़ुदग़रज़ आदमी कहीं आपको ख़ुद ही अपनी ख़्वाहिश का ग़ुलाम न बना ले, या एक जाहिल आदमी ख़ुद भी गुमराह हो और आपको भी गुमराह कर दे, या एक ज़ालिम आपको अपना हथियार बनाए और दूसरों पर ज़ुल्म करने के लिए आपसे काम ले। ग़रज़ यहाँ भी आपको इल्म की वह रौशनी नहीं मिल सकती जो आपको सही और ग़लत में फ़र्क़ बता सकती हो और दुनिया की इस ज़िन्दगी में ठीक-ठीक रास्ते पर चला सके।

हक़ीक़ी हिदायत — सिर्फ़ अल्लाह की तरफ़ से

इसके बाद सिर्फ़ एक पाक ख़ुदा की वह ज़ात रह जाती है जहाँ से यह रौशनी आपको मिल सकती है। ख़ुदा जाननेवाला और देखनेवाला है, वह हर चीज़ की हक़ीक़त को जानता है, वही ठीक-ठीक बता सकता है कि आपका हक़ीक़ी फ़ायदा किस चीज़ में है और हक़ीक़ी नुक़सान किस चीज़ में। आपके लिए कौन-सा काम हक़ीक़त में सही है और कौन-सा ग़लत। फिर ख़ुदावन्द तआला बेनियाज़ भी है, उसकी अपनी कोई ग़रज़ है ही नहीं। उसे इसकी ज़रूरत ही नहीं है कि, अल्लाह की पनाह कि आपको धोखा देकर कुछ फ़ायदा हासिल करे। इसलिए वह पाक बेनियाज़ मालिक जो कुछ भी हिदायत देगा बेग़रज़ देगा और सिर्फ़ आपके फ़ायदे के लिए देगा। फिर ख़ुदावन्द तआला इनसाफ़ करनेवाला भी है, ज़ुल्म का उसकी पाक-ज़ात में एक अंश भी नहीं है। इसलिए वह सरासर हक़ की बिना पर हुक्म देगा। उसके हुक्म पर चलने में इस बात का कोई ख़तरा नहीं है कि आप ख़ुद अपने ऊपर या दूसरे लोगों पर किसी क़िस्म का ज़ुल्म कर जाएँ।

अल्लाह की हिदायत से फ़ायदा कैसे उठाएँ?

यह रौशनी जो अल्लाह तआला की तरफ़ से मिलती है, इससे फ़ायदा उठाने के लिए दो बातों की ज़रूरत है, एक यह कि आप अल्लाह पर और उसके रसूल (सल्ल०) पर जिसके वास्ते से यह रौशनी आ रही है, सच्चे दिल से ईमान लाएँ, यानी आपको पूरा यक़ीन हो कि ख़ुदा की तरफ़ से उसके पाक रसूल (सल्ल०) ने जो कुछ हिदायत दी है, वह बिलकुल हक़ है, चाहे उसकी मसलेहत आपकी समझ में आए या न आए। दूसरे यह कि ईमान लाने के बाद आप उसके हुक्म पर चलें, इसलिए कि हुक्म पर चले बिना कोई नतीजा हासिल नहीं हो सकता। मान लीजिए कि एक शख़्स आपसे कहता है कि फ़लाँ चीज़ ज़हर है, मार डालनेवाली चीज़ है, उसे न खाओ। आप कहते हैं कि बेशक तुमने सच कहा, यह ज़हर ही है, मार डालनेवाली चीज़ है। मगर यह जानने और मानने के बावजूद आप उस चीज़ को खा जाते हैं। ज़ाहिर है कि इसका नतीजा वही होगा जो न जानते हुए खाने का होता। ऐसे जानने और मानने से क्या हासिल? असली फ़ायदा तो उसी वक़्त हासिल हो सकता है जब आप ईमान लाने के साथ उसकी फ़रमाँबरदारी भी करें। जिस बात का हुक्म दिया गया है उसपर सिर्फ़ ज़बान ही से यह न कहें कि हम ईमान लाए और हमने सच माना, बल्कि उसपर अमल भी करें और जिस बात से रोका गया है उससे बचने का सिर्फ़ ज़बानी इक़रार ही न करें, बल्कि अपने आमाल में उससे परहेज़ भी करें। इसी लिए अल्लाह बार-बार फ़रमाता है—

اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ.

हुक्म मानो मेरा और मेरे रसूल का। (क़ुरआन, 4:59)

وَمَنْ تُطِيْعُوْهُ تَهْتَدُوْا.

अगर मेरे रसूल की पैरवी करोगे तब ही तुमको हिदायत मिलेगी। (क़ुरआन, 24:54)

فَلْيَحْذَرِ الَّذِيْنَ يُخَالِفُوْنَ عَنْ اَمْرِهٖ اَنْ تُصِيْبَهُمْ فِتْنَةٌ.

वह लोग जो हमारे रसूल के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करते हैं, उनको डरना चाहिए कि कहीं वे किसी आफ़त में न पड़ जाएँ।

(क़ुरआन, 24:63)

अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की इताअत का मतलब

मुसलमान भाइयो! यह जो बार-बार मैं आपसे कहता हूँ कि सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की पैरवी करनी चाहिए, इसका मतलब आप यह न समझ लें कि आपको किसी आदमी की बात माननी ही नहीं चाहिए। नहीं, असल में इसका मतलब यह है कि आप आँखें बन्द करके किसी के पीछे न चलें, बल्कि हमेशा यह देखते रहें कि जो शख़्स आपसे किसी काम को कहता है, वह ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ कहता है या उसके ख़िलाफ़। अगर वह ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ कहता है तो उसकी बात ज़रूर माननी चाहिए। क्योंकि इस सूरत में आप उसकी पैरवी कब कर रहे हैं? यह तो असल में अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) ही की पैरवी है। और अगर वह ख़ुदा और रसूल के हुक्म के ख़िलाफ़ कहता है तो उसकी बात उसके मुँह पर दे मारिए, चाहे वह कोई हो, क्योंकि आपके लिए सिवाय ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) के किसी के हुक्म की पैरवी जायज़ नहीं है।

यह बात आप समझ सकते हैं कि अल्लाह तआला ख़ुद तो आपके सामने आकर हुक्म देने से रहा! उसको जो हुक्म देने थे वह उसने अपने रसूल (सल्ल०) के ज़रिए से भेज दिए। अब रहे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०), तो आप भी चौदह सौ साल पहले वफ़ात पा चुके हैं। आपके ज़रिए से जो हुक्म ख़ुदा ने दिए थे, वे क़ुरआन और हदीस में हैं। लेकिन क़ुरआन और हदीस ख़ुद भी चलने-फिरने और बोलने और हुक्म देनेवाली चीज़ें नहीं हैं कि आपके सामने आएँ और आकर किसी बात का हुक्म दें और किसी बात से रोकें। क़ुरआन और हदीस के हुक्मों के मुताबिक़ आपको

चलानेवाले बहरहाल इनसान ही होंगे। इसलिए इनसानों की पैरवी के बग़ैर तो चारा ही नहीं, अलबत्ता ज़रूरत जिस बात की है वह यह है कि आप इनसानों के पीछे आँखे बन्द करके न चलें, बल्कि जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा, यह देखते रहें कि वह कुरआन और हदीस के मुताबिक़ चला रहे हैं या नहीं। अगर कुरआन व हदीस के मुताबिक़ चलाएँ तो उनका हुक्म मानना और पैरवी करना आपपर फ़र्ज़ है; और अगर इसके ख़िलाफ़ चलाएँ तो उनका हुक्म मानना या उनकी पैरवी करना हराम है।

दीन और शरीअत

मुसलमान भाइयो! मज़हब की बातों में आप अकसर दो लफ़्ज सुना करते हैं और बोलते भी हैं—एक दीन, दूसरा शरीअत—लेकिन आपमें बहुत कम आदमी हैं जिनको यह मालूम होगा कि दीन के क्या मानी हैं और शरीअत का क्या मतलब है। अनपढ़ तो ख़ैर मजबूर हैं, अच्छे ख़ासे पढ़े-लिखे लोग, बल्कि बहुत-से मौलवी भी यह नहीं जानते कि इन दोनों लफ़्ज़ों का ठीक-ठीक मतलब क्या है और इन दोनों में फ़र्क़ क्या है? इस नावाक़फ़ियत की वजह से अकसर दीन को शरीअत से और शरीअत को दीन से गडमड कर दिया जाता है और इससे बड़ी ख़राबियाँ पैदा होती हैं। आज मैं बहुत सादे अलफ़ाज़ में आपको इनका मतलब समझाता हूँ।

दीन के मानी

दीन के कई मानी हैं। एक मानी इज़्ज़त, हुकूमत, सल्तनत, बादशाही और फ़रमारवाई के हैं। दूसरे मानी इसके बिलकुल उलटे हैं, यानी मातहती, इताअत, ग़ुलामी, ताबेदारी और बन्दगी। तीसरे मानी हिसाब करने और फ़ैसला करने और आमाल की जज़ा व सज़ा के हैं। क़ुरआन शरीफ़ में लफ़्ज़ 'दीन' इन्हीं तीनों मानों में आया है।

फ़रमाया—

إِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْإِسْلَامُ ○

यानी, अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम है। (क़ुरआन, 3:19)

यानी, ख़ुदा के नज़दीक दीन बस वही है जिसमें इनसान सिर्फ़ अल्लाह को इज़्ज़तवाला माने और उसके सिवा किसी के आगे अपने आपको ज़लील न करे। सिर्फ़ अल्लाह को आक़ा और मालिक और सुलतान समझे और उसके सिवा किसी का ग़ुलाम, फ़रमाँबरदार और ताबेदार बनकर न रहे। सिर्फ़ अल्लाह को हिसाब करने और जज़ा व सज़ा देनेवाला समझे और

उसके सिवा किसी के हिसाब से न डरे, किसी की जज़ा का लालच न करे और किसी की सज़ा का ख़ौफ़ न खाए। इसी दीन का नाम 'इस्लाम' है। अगर इसको छोड़कर आदमी ने किसी और को असली इज़्ज़तवाला, असली हाकिम, असली बादशाह और मालिक, असल जज़ा व सज़ा देनेवाला समझा और उसके सामने ज़िल्लत से सिर झुकाया, उसकी बन्दगी और ग़ुलामी की, उसका हुक्म माना और उसकी जज़ा का लालच और सज़ा का ख़ौफ़ खाया तो यह झूठा दीन होगा। अल्लाह ऐसे दीन को हरगिज़ क़बूल नहीं करता, क्योंकि यह हक़ीक़त के बिलकुल ख़िलाफ़ है। ख़ुदा के सिवा कोई दूसरी हस्ती इस पूरी कायनात में असली इज़्ज़तवाली नहीं है, न किसी और की सल्तनत और बादशाही है, न और की ग़ुलामी और बन्दगी के लिए इनसान पैदा किया गया है, न उस असली मालिक के सिवा कोई जज़ा व सज़ा देनेवाला है। यही बात दूसरी आयतों में इस तरह बयान की गई है—

وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ○

यानी, जो शख़्स ख़ुदा की सुलतानी और बादशाही को छोड़कर किसी और को अपना मालिक और हाकिम मानेगा और उसकी बन्दगी और ग़ुलामी इख़तियार करेगा और उसको जज़ा व सज़ा देनेवाला समझेगा, उसके दीन को ख़ुदा हरगिज़ क़बूल करनेवाला नहीं है। (क़ुरआन, 3:85)

इसलिए कि—

وَمَآ اُمِرُوْٓا اِلَّا لِيَعْبُدُوا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ حُنَفَآءَ○

यानी, उन्हें हुक्म दिया गया मगर इस बात का कि अल्लाह ही की बन्दगी करें उसके लिए इताअत को ख़ालिस करके।

(क़ुरआन, 98:5)

इनसानों को तो ख़ुदा ने अपना बन्दा बनाया है और अपने सिवा किसी और की बन्दगी करने का उन्हें हुक्म ही नहीं दिया है। उनका तो फ़र्ज़ यह है कि सब तरफ़ से मुँह मोड़कर सिर्फ़ अल्लाह के लिए अपने दीन

यानी अपनी इताअत और ग़ुलामी को मख़सूस कर दें और यकसू होकर सिर्फ़ उसी की बन्दगी करें और उसी के हिसाब और पूछ-गछ से डरें। क़ुरआन में है—

اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ اَسْلَمَ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّ اِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ۝

यानी, क्या इनसान ख़ुदा के सिवा किसी और की ग़ुलामी और फ़रमाँबरदारी करना चाहता है? हालाँकि ज़मीन और आसमान की सारी चीज़ें सिर्फ़ ख़ुदा की ग़ुलाम और फ़रमाँबरदार हैं और इन सारी चीज़ों को अपने हिसाब-किताब के लिए ख़ुदा के सिवा किसी और की तरफ़ नहीं जाना है। क्या इनसान ज़मीन और आसमान की सारी कायनात के ख़िलाफ़ एक निराला रास्ता अपने लिए निकालना चाहता है? (क़ुरआन, 3:85)

هُوَ الَّذِىْٓ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ كُلِّهٖ وَلَوْ كَرِهَ الْمُشْرِكُوْنَ۝

यानी, अल्लाह ने अपने रसूल को सच्चे दीन का इल्म देकर इसी लिए भेजा है कि वह सारे झूठे ख़ुदाओं की ख़ुदाई ख़त्म कर दे और इनसान को ऐसा आज़ाद कर दे कि वह ख़ुदावन्दे आलम के सिवा किसी का बन्दा बनकर न रहे, चाहे काफ़िर और मुशरिक इसपर अपनी जिहालत से कितना ही वावैला मचाएँ और कितनी ही नाक-भौं चढ़ाएँ। (क़ुरआन, 61:9)

وَقَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ۝

यानी, तुम जंग करो, इसलिए कि दुनिया से ग़ैर-अल्लाह की फ़रमाँरवाई का फ़ितना मिट जाए और दुनिया में बस ख़ुदा ही का क़ानून चले, ख़ुदा ही की बादशाही तसलीम की जाए और इनसान सिर्फ़ ख़ुदा की बन्दगी करे। (क़ुरआन, 8:39)

इस तशरीह से आपको मालूम हो गया कि दीन के क्या मानी हैं—

☆ ख़ुदा को आक़ा और मालिक और हाकिम मानना।

☆ ख़ुदा ही की ग़ुलामी, बन्दगी और ताबेदारी करना। और,

☆ ख़ुदा के हिसाब से डरना, उसकी सज़ा का ख़ौफ़ खाना और उसी की जज़ा का लालच करना।

फिर चूँकि ख़ुदा का हुक्म इनसानों को उसकी किताब और उसके रसूल (सल्ल०) के ज़रिए ही से पहुँचता है, इसलिए रसूल (सल्ल०) को ख़ुदा का रसूल और किताब को ख़ुदा की किताब मानना और उसकी इताअत व पैरवी करना भी दीन में दाख़िल है। जैसा कि फ़रमाया—

يَابَنِىٓ اٰدَمَ اِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ رُسُلٌ مِّنْكُمْ يَقُصُّوْنَ عَلَيْكُمْ اٰيٰتِىْ فَمَنِ اتَّقٰى وَاَصْلَحَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ۝

यानी, ऐ आदम की औलाद अगर तुम्हारे पास तुम्हीं में से ऐसे रसूल आएँ, जो तुम्हें मेरी आयतें सुना रहे हों, तो जो शख़्स तुममें से उन हुक्मों को मानकर परहेज़गारी इख़तियार करेगा और उनके मुताबिक़ अपने अमल सही करेगा, उसके लिए डर और रंज की कोई बात नहीं है।

(क़ुरआन, 7:35)

इससे मालूम हुआ कि अल्लाह तआला बराहेरास्त हर इनसान के पास अपने हुक्म नहीं भेजता, बल्कि अपने रसूलों के वास्ते से भेजता है, इसलिए जो शख़्स अल्लाह को हाकिम मानता हो, वह उसकी फ़रमाँबरदारी सिर्फ़ इसी तरह कर सकता है कि उसके रसूलों की फ़रमाँबरदारी करे, और रसूल के ज़रिए से जो हुक्म आएँ, उनकी इताअत करे। इसी का नाम दीन है।

शरीअत क्या है ?

अब मैं आपको बताऊँगा कि शरीअत किसे कहते हैं। शरीअत के मानी 'तरीक़े और रास्ते' के हैं। जब तुमने ख़ुदा को हाकिम मान लिया और

उसकी बन्दगी क़बूल कर ली और यह तसलीम कर लिया कि रसूल (सल्ल०) उसी की तरफ़ से हुक्म देनेवाले हैं और किताब उसी की तरफ़ से है, तो तुम दीन में दाख़िल हो गए। इसके बाद तुमको जिस तरीक़े से ख़ुदा की बन्दगी करनी है और उसकी फ़रमाँबरदारी में जिस रास्ते पर चलना है उसका नाम शरीअत है। यह तरीक़ा और रास्ता भी ख़ुदा अपने रसूल (सल्ल०) ही के ज़रिए से बताता है। वही यह सिखाता है कि अपने मालिक की इबादत इस तरह करो, तहारत और पाकीज़गी का यह तरीक़ा है, नेकी और तक़वा का यह रास्ता है, हुक़ूक़ इस तरह अदा करने चाहिएँ, मामले यूँ अंजाम देने चाहिएँ और ज़िन्दगी इस तरह बसर करनी चाहिए। लेकिन फ़र्क़ यह है कि दीन हमेशा से एक था, एक ही रहा और अब भी एक ही है, मगर शरीअतें बहुत-सी आईं, बहुत-सी मंसूख़ हुईं, बहुत-सी बदल गईं। मगर कभी उनके बदलने से दीन नहीं बदला। हज़रत नूह (अलै०) का दीन भी वही था, जो हज़रत इबराहीम (अलै०) का था, हज़रत मूसा और ईसा (अलै०) का था, हज़रत शुऐब और हज़रत सालेह और हज़रत हूद (अलै०) का था और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का है। मगर शरीअतें उन सबकी कुछ न कुछ मुख़्तलिफ़ रही हैं। नमाज़ और रोज़े के तरीक़े किसी में कुछ थे और किसी में कुछ। हराम और हलाल के हुक्म, तहारत के क़ायदे, निकाह और तलाक़ और विरासत के क़ानून हर शरीअत में दूसरी शरीअत से कुछ न कुछ मुख़्तलिफ़ रहे हैं। इनके बावजूद सब मुसलमान थे। हज़रत नूह (अलै०) के पैरौ भी, हज़रत इबराहीम (अलै०) के पैरौ भी, हज़रत मूसा (अलै०) के पैरौ भी और हम भी। इसलिए कि दीन सबका एक है। इससे मालूम हुआ कि शरीअत के हुक्मों में फ़र्क़ होने से दीन में कोई फ़र्क़ नहीं होता। दीन एक ही रहता है, चाहे इसपर अमल करने के तरीक़े मुख़्तलिफ़ हों।

शरीअत के फ़र्क़ की नौईयत

इस फ़र्क़ को यूँ समझो कि एक आक़ा के बहुत-से नौकर हैं। जो शख़्स उसको आक़ा ही नहीं मानता और उसके हुक्म को पूरा करना अपने लिए ज़रूरी ही नहीं समझता, वह तो नाफ़रमान है और नौकरी के दायरे ही से बाहर है, और जो लोग उसको आक़ा मानते हैं, उसके हुक्म को मानना

अपना फ़र्ज जानते हैं और उसकी नाफ़रमानी से डरते हैं, वे सब नौकरों के ज़ुमरे में दाख़िल हैं। नौकरी बजा लाने और ख़िदमत करने के तरीक़े मुख़्तलिफ़ हों तो इससे उनके नौकर होने में कोई फ़र्क़ नहीं होता। अगर आक़ा ने किसी को नौकरी का एक तरीक़ा बताया है और दूसरे को दूसरा तरीक़ा, तो एक नौकर को यह कहने का हक़ नहीं कि मैं नौकर हूँ और वह नौकर नहीं है। इसी तरह अगर आक़ा का हुक्म सुनकर एक नौकर उसका मंशा और मतलब कुछ समझता है और दूसरा कुछ और। फिर दोनों अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ इस हुक्म की तामील करते हैं, तो नौकरी में दोनों बराबर हैं। यह हो सकता है कि एक ने मतलब समझने में ग़लती की हो और दूसरे ने सही मतलब समझा हो, लेकिन जब तक इताअत से किसी ने इनकार न किया हो तो किसी को किसी से यह कहने का हक़ नहीं कि तू नाफ़रमान है या तुझे आक़ा की नौकरी से निकाल दिया गया है।

इस मिसाल से आप दीन और शरीअत के फ़र्क़ को बड़ी अच्छी तरह समझ सकते हैं। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पहले अल्लाह तआला मुख़्तलिफ़ रसूलों के जरिए से मुख़्तलिफ़ शरीअतें भेजता रहा। किसी को नौकरी का एक तरीक़ा बताया और किसी को दूसरा तरीक़ा। इन सब तरीक़ों के मुताबिक़ जिन-जिन लोगों ने मालिक की इताअत की वे सब मुसलमान थे, जबकि उनकी नौकरी के तरीक़े मुख़्तलिफ़ थे। फिर जब नबी करीम (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो आक़ा ने हुक्म दिया कि अब पिछले तरीक़ों को हम रद्द करते हैं, आइन्दा से जिसको हमारी नौकरी करनी हो वह इस तरीक़े पर नौकरी करे जो अब हम अपने आख़िरी पैग़म्बर (सल्ल०) के ज़रिए से बताते हैं। इसके बाद किसी नौकर को पिछले तरीक़ों पर नौकरी करने का हक़ बाक़ी नहीं रहा, क्योंकि अब अगर वह नए तरीक़ों को नहीं मानता और पुराने तरीक़ों पर चल रहा है तो वह दरअसल आक़ा का हुक्म नहीं मानता, बल्कि अपने दिल का कहा मान रहा है; इसलिए वह नौकरी से ख़ारिज है, यानी मज़हब की ज़बान में काफ़िर हो गया है।

फ़िक़्ही मसलकों के फ़र्क़ की नौईयत

यह तो पिछले नबियों के माननेवालों के लिए है। रहे अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल०) के पैरौ, तो इनपर इस मिसाल का दूसरा हिस्सा ठीक बैठता है। अल्लाह ने जो शरीअत आप (सल्ल०) के ज़रिए से हमको भेजी है, उसको ख़ुदा की शरीअत माननेवाले और उसपर चलने को ज़रूरी समझनेवाले सब के सब मुसलमान हैं। अब अगर इस शरीअत के हुक्मों को एक शख़्स किसी तरह समझता है और दूसरा किसी और तरह, और दोनों अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ उसपर अमल करते हैं, तो चाहे उनके अमल में कितना ही फ़र्क़ हो, उनमें कोई भी नौकरी से ख़ारिज न होगा। इसलिए कि इनमें से हर एक जिस तरीक़े पर चल रहा है यही समझकर तो चल रहा है कि यह आक़ा का हुक्म है। फिर एक नौकर को यह कहने का क्या हक़ है कि मैं तो नौकर हूँ और फ़लाँ शख़्स नौकर नहीं है। ज़्यादा से ज़्यादा बस वह यही कह सकता है कि मैने आक़ा के हुक्म का सही मतलब समझा और उसने सही मतलब नहीं समझा। मगर वह उसको नौकरी से ख़ारिज कर देने का हक़दार कैसे हो गया? जो शख़्स ऐसी हिम्मत करता है वह गोया ख़ुद आक़ा का मनसब इख़तियार करना है। वह मानो यह कहता है कि तू जिस तरह आक़ा के हुक्म को मानने पर मजबूर है उसी तरह मेरी समझ को भी मानने पर मजबूर है। अगर तू मेरी समझ को न मानेगा तो मैं अपने इख़तियार से तुझको आक़ा की नौकरी से ख़ारिज कर दूँगा। ग़ौर कीजिए यह कितनी बड़ी बात है! इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि ''जो शख़्स किसी मुसलमान को नाहक़ काफ़िर कहेगा उसका क़ौल ख़ुद उसी पर पलट जाएगा।'' क्योंकि मुसलमान को तो ख़ुदा ने अपने हुक्म का ग़ुलाम बनाया है, मगर यह शख़्स कहता है कि नहीं, तुम मेरी समझ और मेरी राय की भी ग़ुलामी करो। यानी सिर्फ़ ख़ुदा ही तुम्हारा ख़ुदा नहीं है, बल्कि मैं भी छोटा ख़ुदा हूँ और मेरा हुक्म न मानोगे तो मैं अपने इख़तियार से तुमको ख़ुदा की बन्दगी से ख़ारिज कर दूँगा चाहे ख़ुदा ख़ारिज करे या न करे। ऐसी बड़ी बात जो शख़्स कहता है उसके कहने से चाहे दूसरा मुसलमान काफ़िर हो या न हो, मगर वह ख़ुद अपने आपको कुफ़्र के ख़तरे में डाल ही देता है।

भाइयो! आपने दीन और शरीअत का फ़र्क़ अच्छी तरह समझ लिया होगा और यह भी आपने जान लिया होगा कि बन्दगी के तरीक़ों में इख़तिलाफ़ हो जाने से दीन में इख़तिलाफ़ नहीं होता बशर्ते कि आदमी जिस तरीक़े पर अमल करे नेक नीयती के साथ यह समझकर अमल करे कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) ने वही तरीक़ा बताया है जिसपर वह अमल कर रहा है और उसके पास अपने इस तर्ज़ेअमल के लिए ख़ुदा की किताब या उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत से कोई सनद मौजूद हो।

दीन और शरीअत का फ़र्क़ न समझने की ख़राबियाँ

अब मैं आपको बताना चाहता हूँ कि दीन और शरीअत के इस फ़र्क़ को न समझने से आपकी जमाअत में कितनी ख़राबियाँ पैदा हो रही हैं।

मुसलमानों में नमाज़ पढ़ने के मुख़्तलिफ़ तरीक़े हैं। एक शख़्स सीने पर हाथ बाँधता है और दूसरा नाफ़ पर बाँधता है। एक शख़्स इमाम के पीछे सूरा फ़ातिहा पढ़ता है और दूसरा नहीं पढ़ता। एक शख़्स आमीन ज़ोर से कहता है दूसरा आहिस्ता से कहता है। इनमें से हर शख़्स जिस तरीक़े पर चल रहा है, यही समझकर चल रहा है कि यह नबी अकरम (सल्ल०) का तरीक़ा है और इसके लिए वह अपनी सनद पेश करता है। इसलिए नमाज़ की सूरतें मुख़्तलिफ़ होने के बावजूद दोनों हुज़ूर (सल्ल०) ही के पैरौ हैं। मगर जिन ज़ालिमों ने शरीअत के इन मसाइल को दीन समझ रखा है, उन्होंने महज़ इन्हीं तरीक़ों के इख़तिलाफ़ को दीन का इख़तिलाफ़ समझ लिया, अपनी जमाअतें अलग कर लीं, अपनी मसजिदें अलग कर लीं, एक ने दूसरे को गालिया दीं, मसजिदों से मार-मारकर निकाल दिया, मुक़दमेबाज़ियाँ कीं और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की उम्मत को टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

इससे भी लड़ने और लड़ानेवालों के दिल ठंडे न हुए तो छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे को काफ़िर और फ़ासिक़ और गुमराह कहना शुरू कर दिया। एक शख़्स क़ुरआन से या हदीस से एक बात अपनी समझ के मुताबिक़ निकालता है तो वह उसको काफ़ी नहीं समझता कि जो कुछ उसने समझा है उसपर अमल करे; बल्कि यह भी ज़रूरी समझता है कि दूसरों से भी

अपनी समझ ज़बरदस्ती तसलीम कराए और अगर वह उसे तसलीम न करे तो उनको ख़ुदा के दीन से ख़ारिज कर दे।

आप मुसलमानों में हनफ़ी, शाफ़ई, अह्ले हदीस वग़ैरह जो मुख़्तलिफ़ मज़हब देख रहे हैं। यह सब क़ुरआन व हदीस को आख़िरी सनद मानते हैं और अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ वहीं से अहकाम निकालते हैं। हो सकता है कि एक की समझ सही हो और दूसरे की ग़लत हो। मैं भी एक तरीक़ेकार का पैरौ हूँ और उसको सही समझता हूँ और उसके ख़िलाफ़ जो लोग हैं उनसे बहस भी करता हूँ, ताकि जो-जो बात मेरे नजदीक सही है वह उनको समझाऊँ और जिस बात को मैं ग़लत समझता हूँ उसे ग़लत साबित कर दूँ, लेकिन किसी शख़्स की समझ का ग़लत होना और बात है और उसका दीन से ख़ारिज हो जाना दूसरी बात। अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ शरीअत पर अमल करने का हर मुसलमान को हक़ है। अगर दस मुसलमान दस मुख़्तलिफ़ तरीक़ों पर अमल करें तो जब तक वे शरीअत को मानते हैं, वे सब मुसलमान ही हैं, एक ही उम्मत हैं, उनकी जमाअत अलग होने की कोई वजह नहीं। मगर जो लोग इस चीज़ को नहीं समझते वे इन्हीं छोटी-छोटी बातों पर फ़िरक़े बनाते हैं, एक-दूसरे से कट जाते हैं, अपनी नमाज़ें और मसजिदें अलग कर लेते हैं, एक-दूसरे से शादी-ब्याह, मेल-जोल और रब्त व ज़ब्त बन्द कर देते हैं और अपने-अपने हम-मज़हबों के जत्थे इस तरह बना लेते हैं कि गोया हर जत्था एक अलग उम्मत है।

फ़िरक़ाबंदी के नुक़सानात

आप अन्दाज़ा नहीं कर सकते कि इस फ़िरक़ाबन्दी से मुसलमानों को कितना नुक़सान पहुँचा है। कहने को मुसलमान एक उम्मत है, हिन्दुस्तान में इनकी करोड़ों की तादाद है। इतनी बड़ी जमाअत अगर वाक़ई एक हो और पूरे इत्तिफ़ाक़ के साथ ख़ुदा का कलिमा बुलंद करने के लिए काम करे तो दुनिया में कौन इतना दम रखता है जो इसको नीचा दिखा सके। मगर हक़ीक़त में इस फ़िरक़ाबन्दी की बदौलत इस उम्मत के सैकड़ों टुकड़े हो गए हैं। उनके दिल एक-दूसरे से फटे हुए हैं। ये सख़्त से सख़्त मुसीबत के वक़्त में भी मिलकर नहीं खड़े हो सकते। एक फ़िरक़े का मुसलमान

दूसरे फ़िरक़ेवालों से उतना ही तास्सुब और बैर रखता है जितना एक यहूदी एक ईसाई से रखता है, बल्कि इससे भी कुछ बढ़कर। ऐसे वाक़िआत देखने में आए हैं कि एक फ़िरक़ेवाले ने दूसरे फ़िरक़ेवाले को नीचा दिखाने के लिए कुफ़्फ़ार का साथ दिया है। ऐसी हालत में अगर मुसलमानों को आप ज़लील व रुसवा देख रहे हैं तो ताज्जुब न कीजिए। यह उनके अपने हाथों की कमाई है। उनपर वह अज़ाब नाज़िल हुआ है जिसको अल्लाह तआला ने अपनी किताब 'कुरआन पाक' में इस तरह बयान किया है—

اَوْ يَلْبِسَكُمْ شِيَعًا وَّيُذِيْقَ بَعْضَكُمْ بَأْسَ بَعْضٍ ۝

> यानी, अल्लाह के अज़ाब की एक सूरत यह भी है कि वह तुमको मुख़्तलिफ़ फ़िरक़ों में तक़सीम कर दे और तुम आपस में ही कट मरो। (कुरआन, 6:65)

भाइयो! यह अज़ाब जिसमें सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान मुब्तिला हैं, इससे नजात उस वक़्त तक मुमकिन नहीं जब तक कि इस फ़िरक़ाबन्दी को हम ख़त्म न कर दें। अगर आप अपनी ख़ैर चाहते हैं तो देर किए बिना इन जत्थों को तोड़ डालिए, एक-दूसरे के भाई बनकर रहिए और एक उम्मत बन जाइए। ख़ुदा की शरीअत में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसकी बिना पर अहले हदीस, हनफ़ी, देवबन्दी, बरेलवी, शीआ, सुन्नी वग़ैरह अलग-अलग उम्मतें बन सकें, ये उम्मतें जिहालत की पैदा की हुई हैं। अल्लाह ने सिर्फ़ एक उम्मत 'उम्मते मुसलिमा' बनाई थी।